मित्र

लेखक
मुनि निर्णयसागर

प्रकाशक
धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
सागर (म. प्र.)

कृति : मित्र

लेखक : मुनि निर्णयसागर

सहयोग : मुनि अजितसागर
ऐलक निर्भयसागर
ब्र. पवन, ललितपुर

संस्करण : तृतीय, अप्रैल 2012

आवृत्ति : 1100

मूल्य : सदुपयोग

दो शब्द

मेरे जीवन का दुर्लभ मित्र जिस पर कुछ कहने का भाव किया है। वह असमय में मेरा साथ छोड़कर चला गया। असमय में चला जाना मुझे अच्छा नहीं लगा, परन्तु वीरचर्या के साथ गया यह मुझे ही नहीं, हर साधक को गौरव की बात की बात है हर्ष का विषय है। जाना तो सबको ही है पर संयम के साथ जाते है तो वह हम सबका आदर्श होता है। मित्र मुनि प्रवचनसागर जी ने ऐसा ही किया और पंचमकाल में एक उत्सर्ग चर्या का उदाहरण प्रस्तुत किया है। कटनी में जब मित्र मुनि की समाधि हो गयी तब समाधिस्थ साधक के लिए श्रद्धांजलि सभा हुई। उसमें मुझे भी कुछ बोलने को कहा गया। उस समय मित्र के प्रति मेरा जो भाव शब्दों में व्यक्त हुआ, उसी का थोड़ा विस्तृत और संस्कृत रूप ही मित्र नामक पुस्तक है। मेरी अल्पबुद्धि होने के कारण पुस्तक में त्रुटिया संभव हैं, मैं कोई बड़ा लेखक भी नहीं हूँ। परन्तु एक महान् गुरु का छोटा सा शिष्य बनने का सौभाग्य अवश्य प्राप्त है। अतः मेरे लेखन कार्य में जो त्रुटियाँ हों, उन्हें पाठकगण अन्यथा ग्रहण नहीं करेंगे ऐसा पूर्ण विश्वास है।

कृति को पूर्ण करने में आचार्य श्री जी का मंगल आशीर्वाद व संघस्थ मुनिराजों का परोक्ष रूप से सहयोग रहा है प्रत्यक्ष में मुनि श्री अजितसागरजी, ऐलक श्री निर्भयसागरजी, ब्रह्मचारी पवनजी का

हर प्रकार से सहयोग रहा है। क्षुल्लक श्री विवेकानंदजी ने मूल आलेख की स्वच्छ प्रति तैयार की थी, आप सभी का बहुत-बहुत आभार। संघस्थ एवं आश्रम आदि में साधनारत त्यागी वृत्ति ब्रह्मचारी भाई-बहनों तथा गृहस्थ श्रावकों का भी कृति में सहयोग रहा है। कृति प्रकाशन में चंचला लक्ष्मी का उपयोग करने वाले श्रावक हैं श्री विजयकुमारजी बेगमगंज वाले, बाहुबली कालोनी, सागर और सुनील मोदी, गल्ला मण्डी, सागर। उक्त सभी श्रावक गुरुआशीष के पात्र हैं। सभी का आभार, सभी को आशीर्वाद एवं सभी के उज्ज्वल भविष्य की कामना भावना सहित गुरु चरणों में बारम्बार नमोऽस्तु सहित विराम।

लेखक

मेरा अभिमत

जीवन के प्रवाह में सभी संसारी प्राणी के जन्म और मरण का चक्र अनादिकाल से चला आ रहा है, और जब तक संसार का अन्त नहीं होता है तब तक संसार में इस जीव का परिभ्रमण चलता ही रहेगा। संसारी प्राणी अपना जीवन दो तरह से जीता है। एक वह संसारी है जो अपनी दृष्टि भोगों की ओर रखता है, और दूसरा वह जो अपनी दृष्टि योगों को साधनों में लगायें रखता है और योगों की ओर दृष्टि रखने वाला योगी अपने संसार को घटाता है। वह अपने लक्ष्य को संसार के अन्त की ओर रखता है और उसी ओर अपने कदमों को बढ़ाता है। मोक्षमार्गी साधक अपना लक्ष्य को लेकर चलता है और मार्ग की सारी बाधाओं को पार करता हुआ आगे बढ़ता है।

एक ऐसा ही पथिक जिसने परम पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज से संसार से पार होने वाले मार्ग को पाया और उन्हीं के निर्देशन, मार्गदर्शन में मोक्ष मार्ग पर अपने कदमों को बढ़ाया और अपनी साधना के माध्यम से अन्तिम लक्ष्य को पाया। ऐसे थे मुनि श्री प्रवचनसागरजी महाराज। जिनके समक्ष अपनी साधना की आकस्मिक परीक्षा की घड़ी आ गई और उन्होंने अपनी समतामयी साधना के बल पर अपनी परीक्षा में सफल हुए। ऐसे साधक को एक मित्र बनकर जिन्होंने हमेशा सहयोग दिया उनको सावधान रखा ऐसे मुनि श्री निर्णयसागरजी महाराज ने अपनी इस कृति में हम सबके

साथी, साधर्मी भाई की जीवंत अनुभूति को लिखा है, जो हर साधक के लिए एक प्रेरणा स्रोत बन गई है। हम सबके आदर्श के रूप में ऐसे व्यक्तित्व की कमी तो खलती है, पर महान् व्यक्ति के बारे में किसी ने कहा है–

मौत उसकी जिसका जमाना करे अफसोस।
यों तो सभी आये हैं, मरने के लिए॥

मरना तो सबको है, लेकिन कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो मरकर भी अमर हो जाते हैं। ऐसे महान् व्यक्तित्व के धनी मुनि श्री प्रवचनसागरजी, जो आज हम सबके बीच तन से तो नहीं पर सबके मन में आज भी हैं और रहेंगे। इसी भावना के साथ हम सब आदर्श मार्ग पर चलकर अपने लक्ष्य के प्राप्त करें।

मुनि अजितसागर

श्रद्धेय को श्रद्धा सुमन

परम पूज्य मुनि श्री निर्णयसागरजी महाराज के अथक प्रयास से **मित्र** शीर्षक से कृति लिखी गई है। कृति का शीर्षक स्वयं बताता है कि प्रस्तुत संवाद एक मित्र को लेकर है इस कृति में आदि से लेकर अंत तक दो मित्रों की चर्चा है। लेखक ने अपने ही मित्र का वृत्तान्त जन्म से लेकर मरण तक का संक्षिप्त, सरल, सुबोध शैली में लिखा है। लेखक स्वयं महाव्रती हैं और लेखक का मित्र भी महाव्रती नग्न दिगम्बर मुनि होकर कुत्ते के काटने पर समाधिस्थ हुए हैं जिनका नाम था, परम पूज्य श्री प्रवचनसागरजी महाराज।

संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज से दीक्षित परम स्नेही पूज्य मुनि श्री प्रवचनसागर जी महाराज समस्त मुनि संघ में आदर्श साधक रहे हैं। उन्हें मैंने भी ब्रह्मचारी अवस्था से लेकर मुनि अवस्था तक देखा है, साथ रहकर उनके स्वभाव को पहचाना है। जब मुनि श्री ब्रह्मचारी अवस्था में सन् 1990 में गुरुकुल मढ़िया जी में थे, तब मैं ऐलक दयासागरजी के साथ बारासिवनी में था। फाल्गुन के अष्टाह्निका में वहाँ सिद्धचक्र मण्डल विधान का आयोजन किया गया था। उसको सम्पन्न कराने जबलपुर के ब्र. जिनेश जी, ब्र. चन्द्रशेखरजी आये मुनिश्री का पूर्व नाम चन्द्रशेखर था। अतः तब मेरा उनसे प्रथम बार परिचय हुआ था उस समय भी वे वैराग्य, ज्ञान एवं चारित्र में दृढ़ थे, चर्या में कोई शिथिलाचार नहीं था, वाणी में मिठास

एवं विनय थी कि हर आदमी उनसे सहज ही प्रभावित हो जाता था अतः जैसे लेखक महोदय का परिचय मुनि प्रवचनसागर जी महाराज से ब्रह्मचारी अवस्था में हुआ था लेकिन मैं उस समय इसी अवस्था में था और आज भी इसी अवस्था में हूँ और आप दोनों मेरे आदर्श और पूज्य बन गये मैंने दोनों महाराजों को ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, ऐलक और मुनि अवस्था में देखा और आप दोनों की मित्रता, सहजता, सरलता व्रतों की कठोरता से परिचित हूँ।

प्रवचनसागर महाराज कैसे थे, क्या थे यह सब मुनि श्री निर्णयसागरजी महाराज ने स्वयं अपनी लेखनी से लिख ही दिया है कि बस इसे आप सबको पढ़ने की जरुरत है।

जब मुनि श्री प्रवचनसागरजी की कटनी में समाधि हुई तब मैं और पूज्य मुनि श्री अजितसागरजी महाराज सागर में थे उसके बाद सीहोरा आये तब गुरुदेव का समाचार आया कि मुनि श्री निर्णयसागरजी कटनी में अकेले हो गये हैं, उनके साथ आप दोनों को रहना है अतः कटनी से मुनि श्री निर्णयसागरजी एवं सीहोरा से हम दोनों विहार करके कुण्डलपुर पहुँचे तभी से हम तीनों महाराज गुरुकृपा से एक साथ धर्म वात्सल्य सहित साधनारत हैं, अतः मेरे ही सामने मुनिश्री ने पहले एक 15-17 पृष्ठ का आलेख लिखा, फिर उसे ही मित्र नाम से मुनि श्री प्रवचनसागरजी के ऊपर जीवन वृत्तान्त की कृति का रूप दिया है। मुनि श्री के इस कठिन कार्य को सागर, जैसीनगर, ईशुरवारा, राहतगढ़ आदि की भीषण गर्मी में भी मैंने अपनी आँखों से देखा जिसके पास भी ये कृति पहुँचेगी वे अवश्य इस कृति के निमित्त से अपने ज्ञान वैराग्य को दृढ़ करेंगे, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

इसी भावना से परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के चरणारविंद एवं समस्त मुनिराजों के चरणों को कोटिशः नमोऽस्तु करता हुआ श्रद्धेय के प्रति श्रद्धा सुमन समर्पित करता हूँ और अब मुनि श्री प्रवचन सागर जी की आत्मा जहाँ भी हो उनके सुख, शांति एवं कल्याण की भावना करता हूँ।

ऐलक निर्भयसागर

यादें

मुनि श्री प्रवचनसागरजी के सम्बन्ध में कुछ भी लिखना मेरे जैसे अल्पज्ञानी व्यक्ति के लिए एक कठिन कार्य ही नहीं दुरुह साहस है मेरे और श्री मुनि प्रवचनसागरजी पूर्व नाम श्री चन्द्रशेखरजी मेरे ही छोटे से ग्राम बेगमगंज (सेवास) के निवासी थे। उनकी बाल स्मृतियों से मैं भलीभाँति परिचित रहा, मेरे मकान एवं उनके मकान के बीच केवल एक दीवार का ही फासला था। उनके पिता श्री एवं मेरे पिता श्री हमनाम श्री बाबूलाल जी थे। दोनों परिवारों में निकटता के अलावा घरूसम्बन्ध भी मधुर रहे हैं।

स्व. पण्डित छोटेलालजी बेगमगंज के प्रमुख धर्माचार्य थे। श्री प्रवचनसागरजी का उनसे घनिष्ठ लगाव था उनकी सेवा में एवं ज्ञानार्जन में निरंतर संलग्न रहे। ग्राम बेगमगंज में एक तो कभी मुनिसंघ का आगमन न के बराबर होता था फिर जो साधु या मुनि या विद्वान् ग्राम में आते या निकलते उनकी सेवा में आप सदैव तत्पर रहते थे।

एक बार मैंने श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा का कार्यक्रम बनाया, जिसके लिए मैंने सागर से पारसनाथ स्टेशन का आरक्षण कराया था। किसी कारण से मेरा जाना संभव नहीं हो पा रहा था अतः मैं अपने आरक्षण को निरस्त कराने जा रहा था। इसी बीच उनको यह ज्ञात हो गया। वे तत्काल मेरे पास आये और कहा कि आप श्री सम्मेदशिखर जी का अपना आरक्षण निरस्त न करायें, मैं उस टिकिट पर यात्रा करना चाहता हूँ।

इस प्रकार मुनि श्री प्रवचनसागरजी ने श्री सम्मेदशिखरजी की शायद यह प्रथम तीर्थ यात्रा की थी। यह बात जब भी मैं मुनि श्री के दर्शनार्थ विभिन्न स्थानों पर गया हूँ, उन्होंने यह घटना याद करायी है। अंर्तमुखी व्यक्तित्व के धनी अत्यन्त निष्पृही, निर्ग्रंथ, अनुपम पुरुषार्थी, पूज्य श्री प्रवचनसागरजी की धर्मचर्या आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के सान्निध्य में निरन्तर चल रही। मैं अमरकंटक में आचार्य संघ की सेवा में था। प्रायः मुनि श्री प्रवचनसागरजी के साथ सुबह जंगल में नित्य क्रिया हेतु जाता था पर दुर्भाग्यवश जिस दिन मुनिश्री पर उपसर्ग स्वरूप कुत्ते ने काटा, मैं उनके साथ जंगल नहीं जा सका। दूसरे दिन मुनि श्री के साथ जब मैं जंगल गया वहाँ मुनिश्री ने कुत्ते की ओर इशारा करते हुए बताया कि इस कुत्ते ने कल मुझे हाथ धोते समय अचानक पीछे से काट लिया था।

घटना के दो माह बाद अचानक कटनी से समाचार आया कि मुनिश्री गंभीर रूप से अस्वस्थ हैं। मैं समाचार सुनकर सन्न रह गया। मुझमें सोचने समझने की सामर्थ्य ही न रही, क्या करूँ? किंकर्त्तव्यमूढ़ हो गया। कोई कुछ भी कहने, सुनने की सामर्थ्य में नहीं था। इससे पूर्व महाराजश्री के गमन की सूचना तो थी कि आचार्य महाराज श्री अमरकंटक से गमन कर रामटेक की ओर जा रहे हैं। पर यह ज्ञात नहीं था कि श्री प्रवचनसागर महाराज अपने सहयोगी श्री निर्णयसागर जी की अस्वस्थता के कारण कटनी, शहडोल की ओर मुनि श्री निर्णयसागरजी की सेवावृत्ति हेतु प्रस्थान का आदेश प्राप्त कर चुके हैं। यह आचार्य श्री और संघस्थ महाराजों से उनका अंतिम वियोग था।

मैं तुरंत घर पहुँचा एवं उसी समय रात्रि करीब 1 बजे सपरिवार कटनी रवाना हो गया। वहाँ मुनि श्री के दर्शन किए। महाराजश्री को कुत्ते के काटने से रेबीज का पूर्ण असर हो चुका था, हालत गंभीर थी। उस अवस्था में भी महाराजश्री पूर्ण विवेक के साथ धर्मध्यान के प्रति सचेत थे। मुझे पहचाना व आशीर्वाद दिया। 2 दिन बाद पूर्ण चैतन्य अवस्था में उनका समाधिमरण करके उनके परिवार के साथ हम भी समाधि समारोह में उपस्थित रहे।

इतनी कम उम्र में इतना बड़ा उपसर्ग होते हुए भी समता का भाव रखते हुए समाधिमरण की घटना दुर्लभ है। उनकी स्मृति आते ही उनकी बचपन से समाधि तक की सभी घटनाएँ आँखों में आ जाती हैं। जो मुनि श्री निर्णयसागरजी ने प्रस्तुत कृति मित्र में दिखाया है यह मित्र कृति हम सबको जीवन उत्थान में प्रेरणा स्रोत होगी, ऐसी आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है। ऐसे अप्रतिम पुरुषार्थ मूर्ति के वैराग्य प्रसंग पर मेरा कोटिशः नमन। मुनि श्री निर्णयसागरजी महाराज ने यह **मित्र** कृति लिखी है। लेखन कार्य पूरा होने के बाद मैंने महाराज से निवेदन किया, इसे हम (भाई सुनील मोदी और मैं) प्रकाशित कराना चाहते हैं। महाराज ने कृपा करके यह मित्र पुस्तक हमको दे दी है, यह हमारा सौभाग्य है। अतः मुनि श्री निर्णय सागर जी को भी कोटिशः नमन सहित।

गुरुचरण सेवक

विजयकुमार जैन (बेगमगंज वाले)

बाहुबली कालोनी, सागर (म.प्र.)

मित्र का अतीत

नगर का मुख्य मार्ग जो सीधा श्री दिगम्बर जैन मंदिर को जाता है। मुख्यमार्ग के ठीक दायें हाथ की तरफ एक सुधी श्रावक का निवास स्थान है। परिवार जन कृषि कार्य के साथ मुख्य रूप से किराना व्यवसाय में संलग्न हैं परन्तु व्यवसाय करते हुए श्रावक के कर्त्तव्यों को परिवार जन सदा स्मरण रखते हैं और प्रतिदिन देवदर्शन पूजन के साथ-साथ दान कार्य भी सम्पन्न होता है। सभी नगरवासी आपको श्री बाबूलाल जी के नाम से जानते हैं, आपकी धर्मपत्नि श्रीमती फूलरानी हैं। आपके यहाँ धर्मसम्पन्न वातावरण में एक-एक क्रम से पाँच पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ। सभी पुत्र-पुत्री माता-पिता के अनुरूप धार्मिक संस्कार सम्पन्न हैं और निम्न पंक्तियों को सार्थक करते हैं -

जाके जैसे बाप मतारी, वाके वैसे लरका।

जाके जैसे नदियाँ नारे, वाके वैसे भरका॥

भाई विपद, अरविंद, बहिन सुषमा, भाई सतीश आदि के क्रम में अगली संतान का भी जन्म होने वाला था। उसके गर्भ में आने के बाद नगर में अनेक मांगलिक कार्यक्रम जैसे विधान पूजन, भक्तामरजी आदि पाठ होते रहे। होनहार बालक की माँ सदा महामंत्र का जाप, बारहभावना आलोचनापाठ आदि धार्मिक कार्यों में संलग्न रहती थीं। ऐसे सुंदर वातावरण में गर्भस्थ बालक को धर्म संस्कारों से संस्कारित

होने के लिए कौन रोक सकता था ? अर्थात् कोई नहीं। नौ मास के उपरान्त शुभ तिथि, शुभ मुर्हूत में माता फूलरानी ने एक और बालक को जन्म दिया। इस दिन सन् उन्नीस सौ साठ के अक्टूबर मास की उनतीस तारीख थी। घर में, पड़ोस में और नगर में लोगों ने खुशियाँ मनायीं, मिष्ठान्न वितरण के साथ आनन्द के गीत भी गाये।

यदि अध्यात्म की आँख से देखें तो न किसी का जन्म होता है और न ही मरण। प्रत्येक द्रव्य अनादि निधन है, अवस्थाएँ (पर्यायें) जन्म लेती हैं और अवस्थाओं का ही मरण होता है। कर्मसिद्धान्त से विचार करते हैं तो मरण के अनन्तर समय में ही जीव जन्म धारण कर लेता है, यही जीव का जन्म समय है। माता के गर्भ से बाहर आना तो जीव का औपचारिक जन्म है। इसलिए लौकिक जन औपचारिक जन्म को जन्म मानते हैं। सही जन्म तो जिस दिन जिस काल में हम धर्म स्वीकार करते हैं, कोई कल्याणकारी यम नियम धारण करते हैं अथवा दिगम्बरी दीक्षा लेते हैं, वही वास्तविक जन्म काल है फिर भी व्यवहारिक दृष्टि से उपरोक्त जन्म को गौण नहीं किया जा सकता है।

उनतीस अक्टूबर को जन्में बालक का नाम रखा गया चन्द्रशेखर। चन्द्रशेखर को लाड़ प्यार की भाषा में परिवार जन ही नहीं नगरवासी भी चंचल कहते थे। यथार्थ में चंचल चंचल न होकर प्रारम्भ से ही गंभीर था, परन्तु संसार में होता यह है कि लाड़ प्यार में गोरे को कल्लू बोलते हैं शायद इसीलिए आप चंचल नाम से पुकारे जाते थे। चंचल एक-एक बसंत पूरा करते-करते पाँच वर्ष के हो गये। संस्कार तो माँ के द्वारा मिल ही रहे थे, बालक अभी तक मंदिर जाने के साथ-साथ णमोकार मंत्र भी सीख चुका था। परन्तु अक्षर

और अंक विद्या भी तो आवश्यक है, इसीलिए चंचल के चाचा ने जो स्वयं शिक्षक थे, आपने स्वयं के सरकारी स्कूल में ही चंचल को पहली कक्षा में दाखिला दिला दिया। जब बालक स्कूल जाता और लौटकर समय से घर आता तो सभी परिवार जन बालक को देखकर अपार प्रसन्न होते थे। छने जल से हाथ पैरों की शुद्धि करके वस्त्र परिवर्तन करता, तभी चंचल चौके में भोजनार्थ आता था। इस प्रकार सुंदर संस्कारों के साथ बालक बढ़ता गया और पढ़ता गया। माँ के द्वारा प्रदत धार्मिक संस्कार स्थायी और मजबूत हो जावें इसलिए चंचल को धर्म की पाठशाला भी भेजा जाने लगा। बालक भी बड़ी लगन और रुचि के साथ पाठशाला में उपस्थित होता था। चंचल का एक छोटा भाई भी हुआ, जिसे मुकेश कहते थे, प्रतिकूल कर्म संयोग से वह बचपन में ही स्वर्गवासी हो गया।

पाठशाला शिक्षक पं. छोटे लाल जी साहब -पंडित जी चन्द्रशेखर का विशेष ध्यान रखते थे क्योंकि बालक की भद्रता और गंभीरता पंडित जी को विशेष आकर्षक लगती थी। णमोकार मंत्र का अर्थ, तीर्थंकरों के चिह्न सहित नाम, बारह भावना आदि अनेक पाठ चंचल ने जल्दी कंठस्थ कर लिए। पंडित जी बच्चों को पाठशाला में अच्छी-अच्छी वैराग्य वर्द्धक कहानियाँ सुनाते थे। पंडित जी विशेषकर चंचल को गृहस्थी के जाल से बचने की सलाह देते थे। पंडित जी के संस्कार बालक को वैराग्य रूपी वृक्ष का बीज बन गये। चंचल अकेला पंडित जी से ज्ञान और संस्कार प्राप्त करता था, ऐसा भी नहीं है परन्तु उसने पंडित जी की सेवा करके वैयावृत्ति का पाठ भी सीख लिया था। आपने वृद्ध पंडित जी की सेवा के साथ साथ उनकी

धर्मपत्नि की भी खूब सेवा की थी जब पंडितानी जी को लकवा रोग हो गया था, तब आप बड़ी तन्मयता से उनकी सेवा कर पुण्य लाभ अर्जित करते थे।

बचपन से ही चंचल जी न तो रात्रि का भोजन करते थे और न ही देवदर्शन के बिना भोजन करना अच्छा मानते थे। आप सर्वप्रथम सूर्योदय के पूर्व उठकर णमोकार मंत्र का ध्यान करते, तत्पश्चात् छने जल से स्नान कर नीचे देखकर (ईर्यासमिति से) मंदिर जाते थे। मंदिर में देवदर्शन, पूजन करके जब लौटते थे तब चंचल भैया नाश्ता करना नहीं भूलते थे, एक दुकान जहाँ छने जल से निर्मित खाद्य सामग्री विक्रय होती थी, पन्द्रह पैसे की जलेबी और दस पैसे का पोहा खाकर सुबह का नाश्ता पूरा करते थे, किन्तु संयम की दृष्टि से चंचल को सुबह का नाश्ता भी उचित न लगा और कालान्तर में उस नाश्ते से भी मुख मोड़ लिया और घर में ही भोजन करना पर्याप्त लगने लगा। गौ पालन से गौ पालक को दूध ही नहीं मिलता है, परन्तु वात्सल्य भावना का पाठ भी सहज सीखने के लिए मिल जाया करता है। शायद इसीलिए चन्द्रशेखर जी गौ पालन में सदा अग्रसर रहते थे, स्वयं हाथ से दूध दोहन करते, गाय की खाद्य सामग्री तैयार करते थे और स्वयं ही पीने के लिए छने जल का प्रबंध करते थे, किन्तु यह सब करते हुए भी चंचल पढ़ाई में पीछे न थे, चाहे स्कूली शिक्षा हो या पाठशाला का कार्य सभी में अग्रसर रहते थे।

प्राथमिक, माध्यमिक शिक्षा के पश्चात् चंचल के द्वारा उच्चतर माध्यमिक शाला कक्षा ग्यारहवीं भी अच्छे अंकों में उत्तीर्ण कर ली गयी, परन्तु चंचल को इतने में ही संतोष न हुआ और महाविद्यालयीन

शिक्षा प्राप्त करने के लिए चंचल ने गृह के साथ-साथ अपने नगर को भी छोड़ दिया तथा बेगमगंज से चलकर आप विदिशा पहुँच गये और श्री सेठ सिंताबराय लक्ष्मीचंद जैन महाविद्यालय में दाखिला ले लिया। यह जैन समाज की ऐसी संस्था है जहाँ पहली कक्षा से लेकर एल.एल.बी. तक शिक्षा प्राप्त करने के लिए पर्याप्त सुविधाएँ हैं। चंचल यहाँ वाणिज्य विषय में स्नातक बनने का पुरुषार्थ करने लगे। साथ में इस बात को भी असत्य कर दिखा दिया कि महाविद्यालयीन जीवन में सदाचार सुरक्षित नहीं रह पाता है।

मित्र राकेश की शादी में चंचल

आप महाविद्यालयीन जीवन में भी स्वयं हाथ से शुद्ध भोजन तैयार करते थे, बाजार का खानपान आप को स्वीकार नहीं था। विदिशा में आपके साथ बेगमगंज के ही चार, पाँच भाई और अध्ययन करते थे, एक बार सारे मित्र चंचल के कमरे में पहुँच गये। तब चंचल

सोला (शुद्धि) का भोजन तैयार कर चुके थे, तब किसी मित्र ने चंचल का भोजन छू लिया, तो चंचल ने कहा, यह भोजन अब आप खा लें, मैं दूसरा बना लूँगा। जब दूसरी बार भोजन तैयार किया तो दूसरे मित्र ने छू लिया फिर तीसरी बार भी संयोग से तीसरे मित्र ने भोजन छू लिया, तब तक शाम ढलने लगी और चन्द्रशेखरजी ने शांत भाव से कहा, अब रात्रि हो जावेगी, अतः आज नहीं कल भोजन करुँगा, इतनी घटना होने के उपरान्त भी भले मित्रों ने भोजन को बार-बार स्पर्श कर लिया पर चन्द्रशेखर जी चंचल ने क्रोध को एक बार भी स्पर्श नहीं किया। इस प्रकार शांत भावों के साथ चन्द्रशेखर जी ने वाणिज्य विषय में स्नातक (बी.काम.) योग्यता हासिल कर ली।

अब चन्द्रशेखरजी विदिशा से वाणिज्य विषय में स्नातक योग्यता प्राप्त कर पुनः बेगमगंज ही आ गये और पारिवारिक व्यवसाय में सहयोगी बन गये। आप व्यवसाय में व्यस्त रहकर भी कभी भी धर्म कार्यों को विस्मरित नहीं करते थे, पूर्व की भाँति प्रतिदिन देवदर्शन पूजन और अवसर अनुसार पात्र दान आपके मुख्य कार्य थे। बेगमगंज के बड़े मंदिर में एक अति मनोज्ञ चन्द्रप्रभ भगवान की मूर्ति है, वहीं पर चन्द्रशेखरजी प्रतिदिन पूजा करते थे और दर्शन पूजन के समय भगवान के समक्ष भावना करते थे कि हे चन्द्रप्रभ भगवान मैं आप जैसा बन जाऊँ। अतः आपको एक बार स्वप्न आया, कि मैं मयूर पिच्छिका और कमंडलु सहित मंदिर में प्रवेश कर रहा हूँ। ऐसे थे,

बालक चन्द्रशेखरजी के मोक्षगामी संस्कार।

चन्द्रशेखर जी वाणिज्य में अच्छे अंकों से स्नातक हो गये थे, इसीलिए आपको किसी भी सरकारी क्षेत्र में भी नौकरी मिल सकती थी, परन्तु आपका चिंतन था कि खेती करें अथवा व्यवसाय। किन्तु नौकरी नहीं करना क्योंकि नौकरी कितने भी ऊँचे दर्जे की क्यों न हो वह तो पराधीन ही रहती है। दूसरी बात कृषि में अल्प भाव हिंसा और गगन सी उदारता रहती है। व्यवसाय में उदारता कम रहती है और भाव हिंसा अधिक परन्तु नौकर तो बेचारा मालिक के अधीन ही होता है, तभी कहा है –

उत्तम खेती मध्यम व्यापार।
जघन्य चाकरी भीख निवार॥

अतः आपने नौकरी को नकार दिया और व्यापार में संलग्न हो गये।

नगर में एक पंडित जी आए, उनको सब पंडित भूपेन्द्रकुमारजी के नाम से जानते थे। आपका असाता वेदनीय कर्म के उदय से स्वास्थ्य खराब हो गया, तब चन्द्रशेखर जी ने पंडित जी की भरपूर सेवा की और धर्म लाभ अर्जित किया। एक बार चन्द्रशेखर की माँ की भावना हुई कि एक बार सभी तीर्थों की यात्रा हो जावे तो अच्छा है, जीवन का भरोसा कौन है ? और चन्द्रशेखर जी, माँ की भावना सुनते ही पूर्ण करने के लिए तैयार हो गये। फिर क्या था? माँ की

भावना पूर्ण हुई और सम्मेदशिखरजी, गिरनारजी आदि सभी प्रमुख तीर्थों की यात्रा सम्पन्न कर माँ ने अपने जीवन को धन्य बना लिया और चन्द्रशेखर ने अपनी माँ की भावना पूर्ण करके अपने जीवन को धन्य माना।

सन् 1980 में क्षुल्लिका चन्द्रमतिजी का बेगमगंज में चातुर्मास (वर्षायोग) हुआ तब चन्द्रशेखर जी ने उनकी भरपूर सेवा कर धर्म लाभ लिया। चातुर्मास के बाद आप सागर तक छोड़ने आए तब क्षुल्लिका जी के उपदेशों से प्रभावित हो आलू का त्याग कर दिया।

सन् 1986 में क्षुल्लक मणिभद्रसागरजी महाराज ने बेगमगंज नगर में चातुर्मास किया। चातुर्मास में महाराज से चन्द्रशेखरजी का विशेष लगाव हो गया था। क्षुल्लक महाराज की प्रतिदिन आहारचर्या में शामिल होकर आहार कराना, रात्रि में क्षुल्लक महाराज के पास ही विश्राम करना उनसे धर्माध्ययन करना, धर्मोपदेश में सदा शामिल रहना आपके दैनिक कार्य हो गये। क्षुल्लकजी महाराज ने बार-बार प्रेरणा देकर चन्द्रशेखरजी को संसार सागर से दूर रहने के लिए तैयार कर दिया और चन्द्रशेखरजी आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत का संकल्प करने तैयार हो गये और संयोग से परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के दर्शनों का सुअवसर भी आपको शीघ्र प्राप्त हो गया। इस समय आचार्यश्री जी श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पपौराजी में वर्षायोग कर रहे थे। आपने सुअवसर का लाभ लेते हुए परम पूज्य आचार्यश्री से व्रत के लिए निवेदन किया। आपके साथ स्वयं की माँ के साथ-साथ बचपन के मित्र राकेश भी थे। सभी ने इतना कठिन व्रत ग्रहण करने के लिए मना किया। माँ ने कहा बेटा घर में ही सद्गृहस्थ

होकर रहो, ब्रह्मचर्य व्रत तलवार की धार पर चलने जैसा है, समझो ब्रह्मचर्य का पालन करना सरल नहीं है। मित्र राकेश कहते हैं क्या कर रहे हो चंचल ? बाई (माँ) का ख्याल रखो, यदि तुम ब्रह्मचारी बन गये तो बाई बहुत दुखीं होगीं और घर बेगमगंज पहुँचकर दादा (पिताजी) हम सब पर बहुत गुस्सा होंगे। पर चंचल का वैराग्य थोड़ा भी कम न हुआ और परम पूज्य आचार्य श्री से दो या तीन वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत ले ही लिया। परम पूज्य आचार्य श्री ने भी चंचल के बार-बार मांगने पर भी आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत नहीं दिया। पर्याप्त परीक्षा के बाद दो या तीन वर्ष का ही नियम दिया आगे घर में रहकर साधना करो और माता-पिता की सेवा करो, इसके उपरान्त ही आगे के लिए विचार करेंगे। कुछ दिन पपौरा क्षेत्र में आहार दान आदि का लाभ लेकर चंचल सभी के साथ बेगमगंज आ गये। यद्यपि वैराग्य में कोई निमित्त बने, यह नियम नहीं है, बिना मिमित्त के भी वैराग्य संभव हो सकता है, जैसा कि भजन में सुनते हैं-

कोई दर्पण देख विरक्ति, कोई मृतक देख वैरागी।

बिन कारण दीक्षा लेता, वह पूर्व जन्म का त्यागी॥

परन्तु भाई चन्द्रशेखरजी के वैराग्य में तो पं. छोटेलालजी की पाठशाला के संस्कार और क्षुल्लक श्री 105 मणिभद्र जी महाराज निमित्त रहे हैं, इनका विस्मरण मंदिर की नींव का विस्मरण है, अतः उक्त दोनों महानुभाव प्रशंसा के पात्र हैं।

क्षुल्लक श्री मणिभद्रसागरजी वर्तमान में मुनि श्री 108 ब्रह्मानंद महाराज के नाम से साधना प्रभावनारत हैं। चन्द्रशेखर जी के वैराग्य

और साधना से उनके पुण्य में वृद्धि हुई और परम पूज्य आचार्य श्री जी ने कार्तिक वदी बारस दिन सोमवार विक्रम संवत बीस सौ तैंतालीस (19/10/1987) में चन्द्रशेखरजी को आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया, स्थान था श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र थौवनजी, जिला गुना (म.प्र.)।

भाई चन्द्रशेखरजी अब ब्रह्मचारी चन्द्रशेखर जी हो गये, तब विशुद्धि और भी बढ़ गई, विचार करने लगे कि संयम के साथ शास्त्री ज्ञान भी अर्जित हो जावे, तो सोने में सुहागा वाली कहावत चरितार्थ हो जावेगी और संयोग से तभी श्री दिगम्बर जैन वर्णी गुरुकुल पिसनहारी मढ़िया जी जबलपुर का नवीनीकरण हुआ। ब्रह्मचारीजी परम पूज्य आचार्य श्री जी से आशीर्वाद व मार्गदर्शन प्राप्त कर गुरुकुल में प्रविष्ट हो गये। आप गुरुकुल में रहकर ज्ञानार्जन के साथ-साथ साधना भी करते थे और भावना करते थे कब मैं मुनि बनूँ, कब मैं मुनि बनूँ।

मित्र

जब मगसिर शुक्ला छठ शनिवार विक्रम सं. 2060 (29/11/2003) को मुनि श्री प्रवचनसागर जी की समाधि हो गयी। तब सकल दिगम्बर जैन समाज कटनी ने हम मुनि चतुष्क के सान्निध्य में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया। उस समय मुझे भी कुछ व्यक्त करने का निवेदन किया गया था। मगसिर शुक्ला सप्तमी (30/11/2003, रविवार) को व्यक्त किया गया विषय विशेष विश्लेषण सहित –

मेरे समक्ष वह सच्चा मित्र जिसके संदर्भ में कुछ व्यक्त करने को कहा गया है। मुझे वह एक मोटी पुस्तक के रूप में दिखाई दे रहा है। मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि मैं पुस्तक का कौन-सा पृष्ठ खोलूँ और पृष्ठ की कौन-सी पंक्ति आपको वाँच कर सुनाऊँ। मेरे पास अनेक लोग आए और कहा, अपने सहधर्मी भाई के संदर्भ में कुछ संस्मरण सुनाइए। किसी ने आकर कहा सुना है, महाराज बहुत महान् साधक थे। किसी ने आकर कहा-ऐसा क्या विशेष हो गया था जिससे यह अभूतपूर्व घटना हो गयी। मैं सभी भाई बहिनों के संवेदना वचनों को निरंतर सुनता गया। विशेष रूप से आज और कल के दिनों में मेरा बोलने का नहीं सहन करने का समय रहा है। पर अब इस समय बोलना आवश्यक लग रहा है। यदि इस समय भी नहीं बोलूँगा तो अपने मित्र के प्रति कृतज्ञ नहीं रहूँगा, कृतघ्नी हो जाऊँगा।

मित्रता कब और कैसे ?

सन् 1989 के ग्रीष्मकाल में बीना, जिला सागर (म.प्र.) में मुनि श्री सुधासागरजी, ऐलक निशंकसागरजी के सान्निध्य में पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव का आयोजन हुआ। उसमें बहुत से स्थानों से बहुत से त्यागी व्रतियों ने आकर धर्म लाभ लिया था। तब ब्र. चन्द्रशेखर जी से मेरा प्रथम परिचय हुआ था। उस समय आप श्री दिगम्बर जैन वर्णी गुरुकुल के साधन विद्यार्थी थे। आप वहाँ पं. श्री पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर वालों से धर्म अध्ययन करते थे। आप परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का भी समय-समय पर सान्निध्य प्राप्त करते थे। गुरुकुल में रहकर आपने पाँच-छह वर्ष धार्मिक अध्ययन किया और शास्त्री की उपाधि अर्जित की। जबकि मैं उस समय पूर्णतः घर में ही साधना करता था। मेरा मात्र दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत का संकल्प था। हम दोनों के विचारों में काफी साम्य दिखाई दिया, विचारों की साम्यता के कारण ऐसा लगा, कि संयम लेकर हम दोनों साथ-साथ रहेंगे क्योंकि विचारों की साम्यता और सत्संगति, इन दोनों से कठिन मोक्षमार्ग भी सरल हो जाता है और वैराग्य भी वृद्धिगत रहता है।

ब्र. चन्द्रशेखरजी को ब्रह्मचारी अवस्था से ही देखा है कि अपनी अवस्था के अनुसार जब जो आवश्यक करना जरुरी होते, तो वह समय पर पूर्ण करते थे। जैसे सामायिक करना, अभिषेक पूजन करना, स्वाध्याय करना आदि। संसार के मोही प्राणियों की भाँति हम

दोनों साथ नहीं रहना चाहते थे, बल्कि परमार्थ दृष्टि से, परमार्थ सिद्धि के लिए साथ रहना चाहते थे। हमेशा मुझे वही साथी पसंद रहा है जो अपने व्रतों का निर्दोष पालन करता हो और अपने लक्ष्य को कभी नहीं भूलता हो। आज भी ऐसे लोगों का अभाव नहीं है, परन्तु अल्पतम संख्या में ही संभव है। ब्र. चन्द्रशेखर जी में उपरोक्त विशेष गुण मेरी मित्रता का कारण रहा है। हम दोनों की मित्रता की सभी आत्मीयजन प्रशंसा करते थे। तेरह-चौदह वर्षों के काल में सभी को हम दोनों की धार्मिक मित्रता का ज्ञान हो गया था इसीलिए कोई-कोई तो यहाँ तक कह उठता था कि क्या आप दोनों सगे भाई हैं। मैं बी. काम. पूर्ण करके आगे पढ़ने सिरोंज से इंदौर चला गया और क्रिश्चियन महाविद्यालय में एम.काम. प्रीवियस में प्रवेश लिया और श्री दिगम्बर जैन नसियाँ छात्रावास में आवास कक्ष ले लिया। लक्ष्य के अनुसार लौकिक पढ़ाई तो नाम था, धार्मिक अध्ययन ही इंदौर जाने का मुख्य ध्येय था। इसीलिए मैंने जनवरी सन् 1990 में सिरोंज (जिला विदिशा) में त्रय गजरथ पंचकल्याणक के बाद महाविद्यालयीन अध्ययन छोड़ दिया और लक्ष्य के अनुरूप मैं श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम इंदौर में ही साधनारत हो गया। पं. श्री रतनलाल जी शास्त्री इंदौर के साथ जाकर परम पूज्य आचार्य श्री का आश्रम हेतु आशीर्वाद भी मिल गया। तब परम पूज्य आचार्य श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर में विराजमान थे। भाई चन्द्रशेखरजी समय-समय पर मिलते रहते थे और पत्र व्यवहार भी बना रहा था। सिरोंज पंचकल्याणक में मैं और ब्र. चन्द्रशेखर आए, तब पूज्य आचार्यश्री को सिरोंज में पड़गाहन करके आहार कराये। तदुपरांत मैंने भी तप कल्याणक के दिन आजन्म

ब्रह्मचर्य व्रत का संकल्प लिया।

इंदौर में उदासीन आश्रम के पास बहिनों के साधनार्थ भी एक आयतन हैं। जिसकी प्रसिद्धि श्री दिगम्बर जैन श्राविकाश्रम के नाम से है। वहाँ पर मेरा एक ब्रह्मचारिणी बहिन अंगूरीबाई से परिचय हुआ। आप उम्र में मुझसे लगभग चौदह-पन्द्रह वर्ष ज्येष्ठ होंगी। आप बेगमगंज के पास की रहने वाली थी। आपके परिवारजन वर्तमान में बेगमगंज में ही रहते हैं। शादी तो हुई थी आपकी, पर प्रतिकूल कर्मोदय के कारण जल्दी पति वियोग का कष्ट सहन करना पड़ा। पति वियोग से वैराग्य उदय हुआ, तत्पश्चात् श्राविका आश्रम इंदौर में धर्म साधना करने लगीं। संसार में जब सब रास्ते बंद हो जाते हैं तो एक ही रास्ता खुला रहता है, वह है धर्म का। विवेकी जीवों को इसी रास्ते में प्रवेश करना श्रेयस्कर है। बहिन जी अंगूरीबाई ने यही किया। आपने बेगमगंज की होने के कारण ब्र. चन्द्रशेखर को खूब निकट से देखा था, बचपन से ही छोटे भाई की तरह व्यवहार करती थीं। बहिनजी ने एक दिन मुझसे कहा भैया! आप चंचल को जानते हो ? बचपन में प्यार से परिवारजन चन्द्रशेखरजी को चंचल कहते थे। बस आगे बहिनजी कहने लगी अपने मित्र को भी इंदौर बुला लो। अंगूरी बहिनजी का निमित्त मिलने पर हम दोनों और भी ज्यादा निकट आ गये। बहिन जी और मेरी भावना अनुसार ब्र. चन्द्रशेखरजी का इंदौर आश्रम आने का मन बन गया और जुलाई 1992 में ब्र. चन्द्रशेखर जी ने वर्णी गुरुकुल जबलपुर छोड़ दिया और श्री दिगम्बर उदासीनाश्रम इंदौर आ गये।

सन् 1993 में ब्र. अंगूरीबाईजी का सम्मेदशिखर यात्रा का कार्यक्रम बना साथ में और भी बहिनें तैयार हो गयीं। सोचा पहले जबलपुर में गजरथ महोत्सव देखेंगे और आचार्य श्री का भी दर्शन लाभ लेंगे तत्पश्चात् वहीं से सम्मेदशिखरजी निकल जावेंगे। पर हमेशा सोचा हुआ कार्य नियम से पूर्ण हो ही जाता है, ऐसा नहीं है और गजरथ पंचकल्याणक में आर्यिका दीक्षा का कार्यक्रम बन गया। परम पूज्य आचार्यश्री जी पहले से तो कुछ बतलाते ही नहीं और अचानक पच्चीस आर्यिका दीक्षाएँ हो गईं। ब्र. बहिन अंगूरीबाई की भी आर्यिका दीक्षा हो गई और बहिन अंगूरीबाई बन गयी आर्यिका एकत्वमति जी। आर्यिका पूर्णमतिजी के संघ में आप साधना करती रहीं। फिर दक्षिण यात्रा के उपरान्त एकत्वमतिजी का शरीर ज्यादा अस्वस्थ हो गया। आर्यिका संघ का जब सन् 2001 का चातुर्मास भोपाल (म.प्र.) में हुआ और चातुर्मास के उपरान्त आर्यिका एकत्वमतिजी की चार उपवास के साथ यमसल्लेखना हो गयी।

श्री दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम इंदौर और ब्र. चन्द्रशेखर जी

ब्र. चन्द्रशेखर जी पूर्व की भाँति सुबह चार बजे उठकर सामायिक, स्तोत्र पाठादि पूर्ण कर लेते थे, फिर शरीर शुद्धि के लिए जल लेने स्वयं कुएँ पर जाते थे, हाथ में एक कड़े वाली बाल्टी, एक पानी छानने के लिए मोटा छन्ना और रस्सी होती थी। श्रावक यदि जल छानने में प्रमाद करता है तो विपुल पाप कर्मबंध करता है। चन्द्रशेखरजी हमेशा रस्सी, कड़े वाली बाल्टी और शास्त्रानुकूल कपड़े का मोटा छन्ना अपने साथ रखते थे, इसलिए आप अहिंसा की मूर्ति एवं श्रावकों के आदर्श थे। आदर्श श्रावक को हर काम अपने हाथ से करना चाहिए, नौकर के माध्यम से अहिंसा धर्म का पालन नहीं होता है। आजकल अधिकांश त्यागी सुविधा भोगी हो गये हैं। मानों उन्हें ज्ञात ही नहीं कि नल के पानी के उपयोग में अहिंसा व्रत दूषित होता है और नल का पानी शुद्ध भी नहीं होता है। वह गंदी नालियों में से पाइप लाइन के माध्यम से घर तक आता है। प्रमादीजन नल की टोंटी खोलते हैं और जितना चाहें, जब चाहें पानी ढोलते रहते हैं। ब्र. चन्द्रशेखरजी सदैव चर्या सहित चर्चा में विश्वास करते थे। कहते थे काम करो, अकेली बातें नहीं। हम लोग आश्रम में रहकर प्रतिमा रूप व्रतों की साधना तो पूरी तरह करते थे, पर हम लोगों के प्रारम्भ में प्रतिमा रूप कोई व्रत नहीं थे। जब भी परम पूज्य आचार्य श्री जी से

प्रतिमा रूप व्रतों के ग्रहण के लिए निवेदन करते थे तब आचार्य श्री कहते थे कि नल के पानी के उपयोग और शौच कूप में जाने से अहिंसा धर्म का पालन नहीं होता है। जिस जल स्रोत में त्रस जीवों की रक्षा हो वह जल और प्रासुक शौच स्थान प्रयोग से अहिंसा धर्म सुरक्षित रहता है। तभी प्रतिमाएँ पाली जा सकती हैं। आश्रम में प्रासुक शौच स्थान का अभाव है इसलिए आप लोग पहले प्रासुक शौच स्थान खोजो, तभी व्रत प्रतिमा ग्रहण करना। किन्तु श्री सिद्ध क्षेत्र मुक्तागिर जी में जब सात क्षुल्लक दीक्षाएँ हो रही थीं तब हमको (मुझे और ब्र. चन्द्रशेखरजी को) एक दर्शन प्रतिमा मिल गयी। वह दिन था 1992 की अक्षय तृतीया का।

जब इंदौर आश्रम में प्रासुक शौच स्थान का भी प्रबंध हो गया तब हम लोगों के लिए आगे की प्रतिमा ग्रहण करने का भी रास्ता प्रशस्त हुआ और ब्र. चन्द्रशेखरजी ने 1993 रामटेक अतिशय क्षेत्र पर दूसरी प्रतिमा ग्रहण की। रामटेक महाराष्ट्र प्रांत का अतिशय मनोरम क्षेत्र है। जहाँ कुंथुनाथजी, अरनाथजी के बीच खड्गासन शांतिनाथजी विराजमान हैं और भी भव्य दर्शनीय जिनालय हैं।

हम लोग ब्रह्मचारी अवस्था से ही एकासन, अपने ही हाथ से केशलोंच आदि करते रहे हैं, ग्रीष्मकाल में भी शाम को जल तक ग्रहण नहीं करते थे। परन्तु ब्र. चन्द्रशेखरजी का संकल्प प्रतिमा रूप में दो तक ही था। श्रेष्ठ साधक वही होता है जो निचले पद में रहकर ऊँची साधना करता है। कालचक्र घूमता गया और एक बार शिक्षण शिविर का प्रसंग आया। श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र तारंगाजी (गुजरात) में धार्मिक शिक्षण शिविर आयोजित हुआ। ग्रीष्मावकाश में हम

आश्रमस्थ ब्रह्मचारियों को समाज ने शिविर हेतु आमंत्रित किया। हमने आमंत्रक समाज को कह दिया कि आपका निमंत्रण तभी स्वीकार करेंगे, जब हमारा शास्त्रानुकूल प्रबंध होगा। जैसे - कुएँ का पानी और प्रासुक शौच जाने का स्थान क्योंकि अहमदाबाद जैसे महानगर में यह दुर्लभ थे, और कुछ दिन महानगर रुककर तारंगा पहुँचना था। प्रबंध होने पर हमने स्वीकृति दे दी और हम दो तीन ब्रह्मचारी शिविर के लिए गुजरात चले गये। कुछ दिन अहमदाबाद के जिनालयों का दर्शन लाभ लिया। तदुपरांत शिक्षण शिविर के लिए श्री दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र तारंगाजी जो कि वरदत्तजी, सायरदत्तजी की निर्वाण भूमि है। यहाँ का आध्यात्मिक वातावरण के साथ-साथ विहंगम दृश्य भी देखने योग्य है। ऐसे पावन पुनीत सिद्धक्षेत्र की वंदना का लाभ लिया और साथ में सानंद शिक्षण शिविर भी सम्पन्न हो गया। अब सबका भाव गुजरात के अन्य पावन तीर्थों की वंदना का भी मन बन गया और हम सभी ब्रह्मचारी गण यात्रा के लिए तारंगा से रवाना हो गये तथा ईडर नगर की वंदना करते हुए हम लोग दूसरे दिन श्री सिद्धक्षेत्र गिरनारजी पहुँच गये।

जैन जगत् का ऐसा कौन-सा श्रावक होगा ? जो श्री दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र गिरनारजी (उर्जयन्त पर्वत) से परिचित नहीं होगा। अर्थात् इस क्षेत्र से सभी परिचित हैं, यहाँ से 22 वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ जी सहित बहत्तर करोड़ मुनिराज निर्वाणधाम गये हैं। जून मास की गर्मी का समय था, पूरी रात कार से चलकर यहाँ आए थे। गर्मी और प्यास के कारण मेरा गला सुबह से ही पानी माँग रहा था। इसलिए मन की स्थिति अनुकूल होकर भी शरीर पहाड़ की वंदना के

अनुकूल न था। मैंने अपने साथियों से पहाड़ की वंदना के लिए असमर्थता दिखाई। भाई चन्द्रशेखरजी को ज्ञात हुआ, कि मैं अस्वस्थ होने से ऊपर वंदना करने नहीं जा रहा हूँ। उन्होंने मुझसे कहा आप हिम्मत नहीं हारें, भगवान् नेमिनाथ की चरण वंदना से सब कुछ ठीक हो जावेगा। हमें यहाँ से आज ही लौटना है, फिर पुनः गिरनारजी आना संभव हुआ या न हुआ, क्या पता। फिर अंत में बोले, ऐसा करो पहली टोंक तक तो चलो शक्ति न हो तो वहीं रुक जाना आगे नहीं चढ़ना। भाई चन्द्रशेखर जी के वात्सल्य स्नेह भाव ने मुझे वंदना के लिए तैयार कर लिया और धीरे-धीरे पाँचवीं टोंक तक की पूरी वंदना करा दी। तब अनुभव हुआ भाई चन्द्रशेखरजी का वात्सल्य स्नेह भाव जल क्या अमृत हो गया। यदि उस दिन भाई चन्द्रशेखरजी का वात्सल्य स्नेह भाव मेरे साथ न होता तो ऐसे पावन पुनीत क्षेत्र की वंदना न कर पाता। इसी तरह आपने ब्रह्मचारी संजय पनागर वालों को सहयोग कर शिखरजी की अधूरी वंदना पूरी करायी थी। ब्र. संजय प्रथम बार सम्मेदशिखरजी की वंदना करने गये थे, वंदना के समय मैं और चन्द्रशेखरजी उन के साथ वंदना में थे। जल मंदिर के बाद आप थक गये, वंदना पूर्ण करने का साहस (उत्साह) कमजोर हो गया। तब चन्द्रशेखरजी ने नींबू सूँघाया, उनकी सेवा के फलस्वरूप संजय भाई की सानंद पूर्ण वंदना हो गयी और संजय भाई का वंदना के प्रति खूब उत्साह जाग गया तब से आप सम्मेदशिखरजी की बहुत-सी वंदना कर चुके हैं। श्री सिद्धक्षेत्र गिरनारजी से हम पालीताना आए।

पालीताना का दूसरा नाम शत्रुंजय है। यहाँ से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन (तीन पांडव) ने कर्म शत्रुओं पर विजय पाकर मोक्ष

पाया है। 3000 श्वेताम्बर मंदिरों के बीच पहाड़ पर एक विशाल अनुपम दिगम्बर जैन मंदिर है जो करोड़ों वर्षों की वीतरागता का दिग्दर्शन कराता है और हजारों दीपकों के समक्ष सूरज की तरह शोभायमान है। पालीताना से घोघा अतिशय क्षेत्र पहुँचे। यह समुद्री तट पर बसा मनोहारी क्षेत्र है। कहते हैं कि सती मैनासुंदरी ने इस स्थान पर ही अपने पैर के अंगुष्ठ से नगर दरवाजे के पट खोले थे। घोघा से भावनगर निकट है, हम भावनगर आदि नगर क्षेत्रों की वंदना दर्शन करते गये। रास्ते में कई बार भोजन आदि का प्रबंध स्वयं करना होता था। तब ब्र. चन्द्रशेखरजी अपनी पाक कला का परिचय देने में कभी पीछे नहीं रहते थे। चाहे हलुबा बनायें, चाहे रोटी उसका स्वाद विलक्षण होता था।

गुजरात यात्रा के बाद पं. मूलचंदजी लुहाड़िया एवं समाज के निमंत्रण पर सब राजस्थान गये और मदनगंज, किशनगढ़ में भी धार्मिक शिक्षण शिविर लगाया। ब्र. चन्द्रशेखर जी ने पूर्व की भाँति तत्त्वार्थसूत्र का अध्यापन कराया, तत्त्वार्थसूत्र और सहस्रनाम आपके प्रिय ग्रन्थ थे। शायद ही उनके जीवन का कोई दिन होगा, जब चन्द्रशेखरजी ने सहस्रनाम का पाठ न किया हो। देवदर्शन पूजन की तरह रोज सहस्रनाम का भी पाठ करने वाले आप विरले साधक थे। सहस्रनाम ग्रंथ में भगवान के एक हजार आठ नामों से भगवान आदिनाथ जी की मुख्यता से स्तुति की गयी है। एक बार कार्तिक मास की अष्टाह्निका में सिद्धचक्र विधान के लिए हम दोनों गंजबासौदा (जिला विदिशा) गये तब गंजबासौदा में आर्यिका दृढ़मतिजी का ससंघ चातुर्मास था। मेरे अंतराय कर्म की उदीरणा प्रारम्भ हो गयी,

चन्द्रशेखर जी पहले मेरा आहार कराते थे बाद में स्वयं करते इस प्रकार दिन-रात वैयावृत्ति करते थे। फलस्वरूप मित्र की सद्भावना से अंतराय कर्म की उदीरणा शांत हो गयी। भाद्रपद (पर्युषण) पर्व में भी आपने अनेक स्थानों पर अच्छी धर्म प्रभावना की है। आप जहाँ भी जाते थे ज्ञान के साथ चारित्र की विशेष छाप भी छोड़कर आते थे। अहमदाबाद, कानपुर, बुलंदशहर, नई दिल्ली आदि बड़े-बड़े नगरों के लोगों को भी आपकी वाणी सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

आश्रम में अधिष्ठाता :

ब्रह्मचारी प्रेमचंदजी के सेवा मुक्त होने के उपरान्त ब्र. चन्द्रशेखरजी को अधिष्ठाता बनाया गया तथा मुझे उपाधिष्ठाता बनाया गया। आश्रम में अब मात्र साधना ही नहीं आश्रम का संचालन की जिम्मेदारी भी हो गयी थी। अचानक जिम्मेदारी आने से परम पूज्य आचार्यश्री से आज्ञा नहीं ले पाए थे, इसीलिए हमको भय था कि आचार्य श्री क्या कहेंगे? जब हम दोनों ग्रीष्मकाल 1994 में अमरकंटक गये, हमने क्षमा माँगते हुए कहा आश्रम के लोगों ने हमें जिम्मेदारी सौंप दी है। सभी आश्रम वालों की भावना थी, अतः स्वीकार करना पड़ा। यद्यपि हमने स्वयं की इच्छा से पद ग्रहण नहीं किया है। आचार्य श्री ने आश्रम का उपरोक्त समाचार सुना तो सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। आचार्य श्री के शब्द थे व्यक्ति को पद की भूख नहीं होना चाहिए, पर पद मिलता है तो पद के निर्वाह की कला अवश्य होना चाहिए। आपने पद माँगा तो नहीं, मिला है तो सेवा का भाव रखना और सेवा करना। अब ब्र. चन्द्रशेखर जी अधिष्ठाता पद का और भी कुशलता से निर्वाह करने लगे। मूलतः उदासीन आश्रम इंदौर वृद्ध

अवस्था में धर्म ध्यान करने वालों को लक्ष्य बनाकर बनाया गया है। गौण रूप से इक्कीस वर्ष से ऊपर उम्र वाला कोई भी आत्मार्थी वहाँ रह सकता है। आश्रम में चार बार स्वाध्याय के साथ सभी धार्मिक कार्य होते हैं। स्वाध्याय सेवा के परिणाम स्वरूप आश्रमस्थ वृद्ध आत्मार्थियों की समाधिमरण की साधना के लिए विशेष भावना हुई। वृद्ध बाबाजी ने हमसे सलाह माँगी। भैया हम अपना अंत संभालना चाहते हैं और आगे कहा - आप लोगों को सहयोग करके अंत में समाधिमरण कराना है, क्योंकि स्वाध्याय के माध्यम से ज्ञात हुआ था कि जीवन भर पाले गये व्रतों की सार्थकता समाधिमरण से ही है। जैसे वर्ष भर विद्यार्थी पढ़ाई करे और अंत में परीक्षा न दें तो पढ़ाई का क्या मूल्य? अतः जैसे पढ़ाई करके विद्यार्थी परीक्षा देता है वैसे ही व्रती व्रतों को जीवन भर पालता है फिर अंत समय में समाधिमरण करता है। यदि दूसरी प्रतिमा के साथ भी निर्दोष व्रतों के साथ श्रावक मरण समाधि सहित करता है तो तीसरे में मोक्ष प्राप्त कर सकता है। वृद्ध त्यागियों को हमने समझाया कि समाधि (सल्लेखना) के लिए मार्ग बावत हम परम पूज्य आचार्य श्री के चरणों में चलते हैं। तैयार होने पर हम दोनों ब्र. सुखलाल जी, ब्र. धर्मचंद जी सागर वालों को अमकंटक ले गये। परम पूज्य आचार्य श्री ने दोनों वृद्ध बाबाजीयों को समाधि साधना का मंगल आशीर्वाद प्रदान किया और समझाया कि कैसे समाधिमरण की साधना करना है? हम लोगों को उनकी कैसे वैयावृत्ति करना है, कब और कहाँ सावधानी रखना है सब प्रकार का मार्गदर्शन और आशीर्वाद प्राप्त कर दोनों वृद्धों को साथ लेकर आश्रम आ गये।

ब्र. सुखलालजी और ब्र. धर्मचंदजी की समाधि-

ब्रह्मचारी सुखलालजी की आश्रम में ही समाधि हो गयी। आप लगभग साठ वर्षों से आश्रम में रहकर साधना करते थे और विधान के मण्डल (माढ़ना) बनाने में अद्‌भुत कला के धनी थे। आपने राजस्थान के बागड़ क्षेत्र में अच्छी धर्म प्रभावना की थी। परन्तु दूसरे ब्र. धर्मचंद जी समाधि साधना में आगे बढ़ते जा रहे थे। आपको पुनः हम दोनों परम पूज्य आचार्य श्री के पास ले गये तब पूज्य गुरुवर का अतिशय क्षेत्र रामटेक में 1994 का चातुर्मास सम्पन्न होना था। ब्र. धर्मचंद जी की समाधि विधिवत प्रारंभ हो गई ।

परम पूज्य आचार्य श्री महाराज ने सर्वप्रथम बाबाजी की मानसिक दृढ़ता की परीक्षा ली। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर दसवीं (अनुमति त्याग) प्रतिमा प्रदान की। साधना चलती रही, अन्नाहार कम करते हुए जलाहार बढ़ाया, ताकि पेट की शुद्धि हो जावे तभी विशुद्धि रूप कषाय सल्लेखना होगी। आध्यात्मिक साधना करते हुए कुछ समय बाद क्षपक की मुनि बनने की भावना होने लगी तब मुनि तो नहीं परन्तु आचार्य श्री जी ने ब्र. धर्मचंद जी को क्षुल्लक दीक्षा प्रदान कर दी और ब्र. धर्मचंद जी दीक्षा उपरान्त बन गये क्षुल्लक 105 धर्म सागर जी महाराज।

ब्र. चन्द्रशेखरजी स्वयं क्षपक के आहार के लिए सामग्री तैयार करते थे, फिर हम दोनों क्षपक को आहार कराते थे। ब्र. चन्द्रशेखरजी का सोचना था, अपने हाथ से कार्य करने से क्षपक को ज्यादा लाभ होगा, उसकी विशुद्धि संयम लब्धि स्थान बढ़ेंगे। दिन के साथ रात में भी जागृत रहना होता था। संघ के सभी पूज्य महाराज

और अन्य ब्रह्मचारी भाईयों का भी पर्याप्त सहयोग मिलता था। सल्लेखना में सेवा योगदान देना क्षपक पर उपकार नहीं सेवकों का अपना सौभाग्य माना जाता है क्योंकि क्षपक की सेवा स्वयं के उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कार्य है। पूज्य आचार्यश्री सहित मुनि महाराजों का सम्बोधन और सभी ब्रह्मचारी भाईयों की सेवा सफल हुई और चालीस दिन के बाद क्षुल्लक धर्म सागरजी महाराज का सकुशल समाधिमरण हो गया। हमको समाधि कराने में नवीन अनुभव प्राप्त हुए, जैसे अंत समय में क्षपक सचेतन रहे इसीलिए पेट शुद्धि आवश्यक है और पेट शुद्धि के लिए जलपान अधिक करना चाहिए। अन्न का सेवन कम करते हुए पूर्णतः अन्न का त्याग फिर का भी त्याग कर देना चाहिए।

ब्र. रंजन, ब्र. धर्मचंदजी के साथ रामटेक में ब्र. चंद्रशेखर

सल्लेखना की सफलता के लिए गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण नितान्त आवश्यक है। समाधि के उपरान्त हम दोनों की रामटेक में ही

चातुर्मास पर्यंत साधना अध्ययन करने की भावना थी। परन्तु गुरु की आज्ञा हुई, कि हम दोनों को पुनः इंदौर आश्रम जाना है। आचार्य श्री का भाव रहा, वहाँ रहना आपकी जिम्मेदारी है। हम दोनों गुरु की आज्ञा स्वीकार कर आश्रम चले आए।

क्षु. धर्मसागरजी की दीक्षा के समय ब्र. चंद्रशेखर, रंजन

क्षु. धर्मसागरजी की सेवा में ब्र. चंद्रशेखर

क्षु. धर्मसागरजी की सेवा में ब्र. चंद्रशेखर, ब्र. रंजन

गुरुकुल में सम्मानित होते ब्र. चंद्रशेखरजी

ब्रह्मचारी परसराम जी की समाधि

ईस्वी सन् 1995 चातुर्मास में परम पूज्य आचार्य श्री का प्रवास श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर, दमोह (म.प्र.) में था। हम दोनों पुनः सल्लेखना (समाधि) के लिए ब्र. परसरामजी को लेकर पहुँचे। आप उम्र में 96 वर्ष के थे। सेठ हुकुमचन्द्रजी इंदौर के समय से आश्रम में साधनार्थ पधारे थे। आपके प्रति सेठजी का अच्छा बहुमान था। लंबे समय से सप्तम (ब्रह्मचर्य) प्रतिमा के संकल्प सहित साधना कर रहे थे। श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर बुंदेलखण्ड के दमोह जिले में स्थित है। यहाँ पर पद्मासन 15 फुट की बड़े बाबा आदिनाथ भगवान की मनोज्ञ प्रतिमा है। कुण्डलपुर क्षेत्र पर बड़े बाबा, आदिनाथ का जिनालय सहित बासठ-त्रेसठ जिनालय हैं। यहाँ कुण्डलपुर से श्री अंतिम केवली श्रीधर स्वामी मोक्ष गये हैं। ऐसे पावन क्षेत्र पर परम पूज्य आचार्य श्री के अभी तक पाँच चातुर्मास हो चुके हैं। ब्र. परसरामजी का भी सौभाग्य रहा कि ऐसे पावन पुनीत क्षेत्र पर समाधिमरण करने आए और परम पूज्य आचार्य श्री के अनुसार आपकी समाधि प्रारम्भ हो गई। क्षपक ब्रह्मचारी जी ने पहले आजन्म मीठा, नमक का प्रत्याख्यान किया। तत्पश्चात् दशम् (अनुमति त्याग) प्रतिमा ग्रहण कर ली।

आपकी बहुत अच्छी विशुद्धि बढ़ती जा रही थी और निवेदन किया, आचार्य महाराज मुझे मुनि बना दीजिए। आपकी मुनि बनने

की भावना अवश्य थी पर शरीर मुनि बनने योग्य नहीं था। अतः आपको क्षुल्लक दीक्षा में ही संतोष करना पड़ा। क्षुल्लक दीक्षोपरान्त नाम रखा गया - क्षुल्लक श्री 105 पुनीतसागरजी महाराज। जब आपकी दीक्षा हुई थी तो उस समय मेरी आँखें नम हो गयी थीं कि आप तो दीक्षित हो गये, पर मैं वहीं का वहीं हूँ। पूर्व की भाँति ब्र. चन्द्रशेखरजी, ब्र. भगवानदास जी क्षपक को अन्य साधना कराते थे। 26 सितम्बर 1995 को क्षुल्लक पुनीतसागरजी महाराज नश्वर शरीर छोड़कर स्वर्गवासी हो गये। पं. जगमोहन लाल जी कटनी वाले भी यहाँ समाधि साधनारत थे। उनकी वैयावृत्ति का लाभ भी हम दोनों को प्राप्त हुआ। इस प्रकार ब्र. चन्द्रशेखरजी जैसे अच्छे मित्र के साथ अनेक सल्लेखनाओं में सेवा अनुभव लेने का मेरा सौभाग्य रहा।

ब्र. परसरामजी

जब-जब सल्लेखना होती थी लगता था हमारी भी एक न एक दिन समाधि होगी। परन्तु हम मुनि दीक्षा लेकर पहले साधना करेंगे और धर्म की प्रभावना करेंगे। ब्र. चन्द्रशेखर जी वर्तमान की तरह पच्चीस-पचास वर्षों तक मेरे साथ मुनि अवस्था में भी रहेंगे।

समाधिमरण के सम्बन्ध में आचार्य वट्टकेर महाराज ने मूलाचार ग्रन्थ में दो अधिकार

पुनीतसागर के कक्ष में आचार्य श्री और ब्र. चंद्रशेखर

लिखे हैं पहला बृहत् प्रत्याख्यान अधिकार और दूसरा संक्षेप प्रत्याख्यान अधिकार। बृहत् प्रत्याख्यान के अंर्तगत क्षपक धीरे-धीरे कषाय और काय को क्षीण करता जाता है। क्रमशः आहार जल को कम करते-करते अंत में धर्मध्यान के साथ शरीर को छोड़ता है। जबकि संक्षेप प्रत्याख्यान के अंर्तगत क्षपक की आकस्मिक समाधि होती है, जब किसी उपसर्ग, असाध्य रोग आदि से तत्काल शरीर छूटना होता है। तब त्याग के क्रम के बिना चारों प्रकार के आहारों का एक साथ प्रत्याख्यान करना संक्षेप प्रत्याख्यान कहलाता है उपरोक्त साधकों (ब्र. सुखलाल जी, क्षुल्लक धर्मसागरजी और क्षुल्लक पुनीतसागरजी) की समाधियाँ बृहत् प्रत्याख्यान मानी जावेंगी। यद्यपि मूलाचार का कथन मुनियों की मुख्यता से है। पर गौण रूप से श्रावक भी दोनों प्रत्याख्यान करता है। साहस की अपेक्षा देखें, तो बृहत् प्रत्याख्यान से भी कठिन संक्षेप प्रत्याख्यान प्रतीत होता है। संक्षेप प्रत्याख्यान के साथ निश्चित उम्र का भी कोई सम्बन्ध नहीं है। पच्चीस तीस वर्ष की उम्र के साधक को भी कर्मोदय के कारण संक्षेप प्रत्याख्यान करना पड़ सकता है।

ब्रह्मचारी चंद्रशेखर के द्वारा सप्तम प्रतिमा ग्रहण

जब क्षुल्लक पुनीतसागर जी की समाधि हो गयी तदुपरांत हम दोनों को लगा कि पिछले वर्ष की तरह हमें आश्रम जाने की आज्ञा मिलेगी। हमने सोचा आचार्य श्री के बुलाने के पूर्व ही हम पूछ लें कि अब समाधि उपरान्त हमें क्या आदेश है, क्या गुरुआज्ञा है ? हम दोनों परम पूज्य आचार्य श्री जहाँ बैठते थे वहाँ गये। नमोऽस्तु आदि योग्य विनय और गुरु आशीर्वाद प्राप्त करने के उपरान्त हमने पूछा अब क्या आज्ञा है ? आचार्य श्री जी ने अपनी परिचित शैली में उत्तर दिया- सोचते हैं, अभी जल्दी नहीं करो। हम अपने कर्त्तव्य उपरान्त निश्चित होकर धर्म कार्यों में संलग्न हो गये। आश्विन शुक्ल त्रयोदशी (छह अक्टूबर) की शाम को भक्ति के उपरान्त एक व्यक्ति बुलाने आया, कहा -आपको महाराज बुला रहे हैं। मुझको लगा अभी आचार्य भक्ति करके आए हैं, क्यों बुलाया है ? मैंने बावन नम्बर मंदिर में जाकर देखा। परम पूज्य आचार्य श्री के पास मुनि श्री समयसागर जी, योगसागरजी, समाधिसागरजी बैठे हैं। मैंने जाकर सभी को नमोऽस्तु किया और महाराज त्रय के पास बैठ गया। तत्पश्चात् मुझे बताया गया कि कल दीक्षाएँ हो रही हैं, आपका क्या विचार है। मैंने कहा ठीक है, मुझे भी दीक्षा देकर आप कृतार्थ करें। दीक्षा लेने के संकल्प के लिए सभी ने कार्योत्सर्ग किया और मेरी दीक्षा होना पक्की हो गयी।

परम पूज्य आचार्य श्री जी की अनेक विशेषताएँ हैं, उसमें एक यह भी है कि दीक्षा कार्यक्रम महीनों पूर्व घोषित नहीं करते हैं। योग्य दीक्षार्थी समझकर, उस दीक्षार्थी की स्वयं की भावना होने पर

ही दीक्षा देते हैं। क्योंकि दीक्षार्थी की स्वयं साधना और भावना होने पर ही व्रतों का अच्छी तरह पालन होता है। जब दीक्षा कार्यक्रम पक्का हो गया, तब सर्वप्रथम मित्र चन्द्रशेखर जी को बताया कि हम तीन भाइयों की कल दीक्षा है। ब्र. चन्द्रशेखरजी दीक्षा का समाचार सुनकर प्रसन्न हुए। ब्र. चन्द्रशेखरजी के पूछने पर बताया कि ब्रह्मचारी दिलीप जी (छिंदवाड़ा) और ब्र. कुलभूषण जी भी मेरे साथ दीक्षार्थी हैं और सुबह 8 बजकर 30 मिनिट पर आश्विन शुक्ल चौदस विक्रम संवत् 2052 शनिवार को हम तीनों की क्षुल्लक दीक्षा हो गयी। ब्र. दिलीप जी, ब्र. कुलभूषण जी और मैं क्रमशः क्षुल्लक श्री 105 निर्वेगसागरजी, क्षुल्लक श्री 105 विनीतसागरजी व क्षुल्लक श्री 105 निर्णयसागर बन गये। शाम को इसी दिन पं. जगमोहन शास्त्री की भी समाधि हुई थी। ब्र. चन्द्रशेखरजी दीक्षा के समय स्वस्थ भी न थे और आश्रम के जिम्मेदार पद पर भी थे। इसीलिए दोनों एक साथ दीक्षा न पा सके परन्तु कार्तिक कृष्ण अमावस्था (दीपावली) को भाई चन्द्रशेखर जी ने सप्तम प्रतिमा अवश्य ग्रहण कर ली। और आप शीघ्र दीक्षा की भावना लेकर पुनः

ब्र. रंजन की दीक्षा में खुशी व्यक्त करते हुए ब्र. चंद्रशेखरजी

इंदौर आश्रम चले गये। ब्र. चन्द्रशेखरजी के आश्रम चले जाने पर जिन लोगों को खालीपन-सा लगा उन लोगों ने पूज्य आचार्यश्री जी से कहा एक भैया की दीक्षा हो गयी और एक भैया आश्रम चले गये। पूज्य आचार्यश्री जी ने कहा - बाहुबली दीक्षित हो गये, भरतजी घर को चले गये।

गुजरात यात्रा और क्षुल्लक दीक्षाएँ

कुण्डलपुर से संघ का विहार चातुर्मास उपरान्त 19 नवम्बर, 1995 को हो गया। कुण्डलपुर से बीना बारह होते हुए संघ नेमावर आया। बुंदेलखण्ड के सागर जिले में एक मनोरम अतिशय सम्पन्न क्षेत्र है, उसका नाम है बीना बारह जी। यहाँ लगभग 15 फीट ऊँची शांतिनाथ भगवान की खड्गासन मनोज्ञ प्रतिमा है और माटी के महादेव नाम से विख्यात विशाल महावीर भगवान की प्रतिमा भी विशेष दर्शनीय है। परम पूज्य आचार्य श्री ने अनेक वाचना आदि क्षेत्र पर सम्पन्न की है।

नेमावर :

नेमावर देवास (म.प्र.) में नर्मदा नदी के तट पर वह आध्यात्मिक क्षेत्र है। जहाँ से आदिकुमार आदि साढ़े पाँच करोड़ मुनिराज सर्वकर्म नष्ट कर सिद्धशिला गये हैं। यहाँ परम पूज्य आचार्य श्री के आशीर्वाद से पंच बालयति सहित त्रिकाल चौबीसी मंदिर निर्माणाधीन है। क्षेत्र का नामकरण परम पूज्य आचार्य श्री के मुखारविंद से श्री दिगम्बर जैन सिद्धोदय क्षेत्र हुआ। परम पूज्य आचार्य श्री के साथ दो चातुर्मास और कई वाचनाएँ करने का सिद्धोदय में हमको

सौभाग्य मिला है। जब संघ नेमावर आ गया तो ब्र. चन्द्रशेखरजी अन्य ब्रह्मचारी भाइयों के साथ आचार्य श्री के दर्शनार्थ ससंघ नेमावर आ गए। आगे विहार में साथ रहने का मन बना लिया। विहार में चौका लगाकर आहार देना, वैयावृत्ति करना प्रारम्भ कर दिया। विहार करके हम लोग सिद्धवर कूट पहुँच गये।

सिद्धवर कूट :

सिद्धवर कूट मालवा निमाड़ (म.प्र.) का अनुपम सिद्धक्षेत्र जहाँ नर्मदा नदी के तट से मघवा सनतकुमार दो चक्रवर्ती व दस कामदेवों ने कर्म नाश किया और मोक्षधाम के वासी हुए हैं। श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र सिद्धवर कूट खरगोन जिले की बड़वाह तहसील में आता है। यहाँ कुछ दिन रुककर संघ बावनगजा सिद्धक्षेत्र पहुँचा।

बावनगजा :

यह सार्थक नाम है। यहाँ बावनगजा अर्थात् 84 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेवजी की खड्गासन प्रतिमा है। क्षेत्र से कुंभकर्ण और इंद्रजीत आदि महान् आत्माओं ने अपने को निकल परमात्मा बनाया है। श्री दिगम्बर सिद्धक्षेत्र बावनगजा बड़वानी जिला मुख्यालय से मात्र आठ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ से आगे चलकर परम पूज्य आचार्यश्री ने ससंघ मध्यप्रदेश छोड़कर गुजरात प्रांत में प्रवेश किया और पावागढ़ आए।

पावागढ़ :

इस पावन पुनीत क्षेत्र से जगत्पूज्य श्री राम पुत्र मदनांकुश और लवणांकुश आदि पाँच करोड़ महामुनिराज कर्म रज छोड़कर

मोक्ष गये हैं। क्षेत्र सुंदर और सर्वाकर्षक जिनालयों से युक्त है हमने ब्र. चन्द्रशेखरजी के साथ पहाड़ की वंदना का आनंद प्राप्त किया तत्पश्चात् अतिशय क्षेत्र भिलोरा आए। श्री सिद्धक्षेत्र पावागढ़ के निकट भिलोरा ग्राम की चौबीसी भी विशेष दर्शनीय है। भिलौरा चौबीसी का भी दर्शन लाभ लिया। इस प्रकार विभिन्न अतिशय क्षेत्रों के दर्शन वंदना करते हुए श्री सिद्धक्षेत्र तारंगाजी पहुँच गये।

तारंगा :

श्री सिद्धक्षेत्र तारंगा के आध्यात्मिक वातावरण को देखकर सभी साधक गण बहुत प्रसन्न हुए। आचार्य श्री का भाव भी तारंगाजी में ब्रह्मचारियों को क्षुल्लक बनाने का हो गया। ब्र. चन्द्रशेखरजी विहार के बाद आश्रम इंदौर चले गये थे, पुनः उनको बुलाया गया। ब्र. चन्द्रशेखरजी, ब्र. सर्वेश, ब्र. सुकौशल आदि के साथ पुनः तारंगा आ गये। आपने आश्रम की जिम्मेदारी ब्र. अनिलजी को अधिष्ठाता बनाकर हस्तांतरित कर दी। और वैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया, 20 अप्रैल 1996) को तपोवन में भव्य क्षुल्लक दीक्षाएँ सम्पन्न हो गयीं।

दीक्षार्थी ब्र. विनोदजी, ब्र. प्रदीपजी (विद्यार्थी), ब्र.स्वतंत्रजी, ब्र.चन्द्रशेखरजी (चंचल भैया), ब्र. शांतिनाथजी, ब्र. पायप्पाजी, दीक्षित हो गये। दीक्षोपरान्त क्रमशः नाम रखा गया – क्षुल्लक श्री 105 प्रज्ञासागरजी, क्षुल्लकश्री 105 प्रबुद्धसागरजी, क्षुल्लक श्री 105 प्रशस्त सागरजी, क्षुल्लक श्री 105 प्रवचनसागरजी, क्षुल्लक श्री 105 पुण्यसागरजी, क्षुल्लक श्री 105 पायसागरजी महाराज। ऐसे पावन

दीक्षा के पूर्व
दीक्षा के भाव
व्यक्त करते हुए
ब्र. चंद्रशेखरजी

आचार्य श्री के समक्ष दीक्षा हेतु श्री फल समर्पित करते हुए ब्र. चंद्रशेखरजी

दीक्षा पूर्व परिवार के साथ ब्र. चंद्रशेखरजी

दीक्षा के बाद क्षुल्लक निर्णयसागर के साथ क्षुल्लक प्रवचनसागर

सिद्धक्षेत्र पर ब्र. चन्द्रशेखर जी की प्रवचनसागर के रूप में कहानी प्रारम्भ हुई।

अक्षय तृतीया का मांगलिक दिवस मंगलमयी दीक्षाओं के साथ सम्पन्न हुआ। दूसरे दिन संयोग से क्षुल्लक 105 प्रवचनसागरजी के साथ मेरा भी बेगमगंज के श्रावकों के यहाँ पड़गाहन हो गया। पहले मित्र की पारणा करायी तत्पश्चात् स्वयं ने आहार किए। दीक्षा के उपरान्त तारंगाजी से संघ का विहार हो गया। मांगीतुंगी क्षेत्र पर चातुर्मास की संभावना थी, रास्ते में महेसाना, अहमदाबाद, बड़ोदरा होते हुए महुआ अतिशय क्षेत्र पहुँच गये। गुजरातवासियों का प्रबल पुण्य था, शायद इसीलिए आगे विहार न होकर चातुर्मास श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र महुआजी में ही स्थापित हो गया।

महुवा :

यह दिग. जैन अतिशय क्षेत्र सूरत जिले में स्थित है। यहाँ श्री भगवान पार्श्वनाथ जी की अतिशयकारी श्याम वर्ण प्रतिमा है। जैन-जैनेत्तर इनको विघ्नहरण पार्श्वनाथ कहकर पूजा भक्ति करते हैं हमेशा की तरह परम पूज्य आचार्य श्री की चातुर्मास में खूब साधना

महुवा में आहार को निकलते हुए क्षु. प्रवचनसागरजी

प्रभावना जारी थी। मोक्ष सप्तमी के दिन पूज्य आचार्य श्री ने हम लोगों को बुलाया और क्षुल्लक श्री निर्वेगसागरजी, क्षुल्लक श्री विनीतसागरजी, मुझे और क्षुल्लक श्री प्रबुद्धसागरजी को ऐलक दीक्षा से दीक्षित कर दिया। क्षुल्लक श्री प्रवचनसागरजी की भी ऐलक बनने की प्रबल भावना थी। किन्तु आचार्य श्री ने क्षुल्लक प्रवचनसागरजी को और भी श्रेष्ठ सिद्धक्षेत्र पर ऐलक दीक्षा देने का भाव बनाया होगा। इसीलिए आपकी महुआ में ऐलक दीक्षा नहीं हुई और सानंद चातुर्मास के बाद श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र गिरनारजी के लिए संघ का विहार हो गया। विहार करते हुए ससंघ हम लोग अंकलेश्वर पहुँचे। तारंगा से महुवाजी आते समय भी हम सब लोग अंकलेश्वर आए थे।

अंकलेश्वर :

जब आचार्य पुष्पदन्त-भूतबली महाराज का आचार्य धरसेन महाराज से सिद्धान्त का अध्ययन पूर्ण हो गया और गुरु ने विहार की आज्ञा दे दी तब गुरु धरसेनाचार्य के शिष्य आचार्य पुष्पदन्त-भूतबली महाराज ने गिरनारजी से आकर यहीं चातुर्मास किया था। अंकलेश्वर में कई भव्य जिनालय हैं, जो दर्शनीय हैं। अंकलेश्वर भरुच जिले के अन्तर्गत आता है। परम पूज्य आचार्यश्री जी ससंघ यहाँ से विहार करके पालीताना पहुँचे। पालीताना से श्री दिगम्बर जैन क्षेत्र गिरनारजी पहुँचे।

गिरनारजी में ऐलक दीक्षाएँ -

परम पूज्य आचार्यश्री के साथ सभी वंदना के लिए पहाड़ पर

गये। पाँचवी टोंक पर जाकर सभी ने भगवान नेमिनाथजी के चरण चिह्नों की वंदना की। सानंद वंदना के बीच चौथी टोंक पर कुछ क्षुल्लकों ने परम पूज्य आचार्यश्री से दीक्षा के लिए निवेदन किया था। आचार्य श्री जी ने निवेदन अनुसार क्षुल्लक प्रशस्तसागरजी, क्षुल्लक श्री प्रवचनसागरजी, क्षुल्लक श्री पुण्यसागरजी, क्षुल्लक श्री पायसागरजी को पाँचवीं टोंक पर ऐलक बना दिया और क्षुल्लक श्री 105 प्रवचनसागरजी ऐलक श्री 105 प्रवचनसागरजी बन गये। अब ऐलक प्रवचनसागरजी मुनिधर्म के अति निकट आ गये। मगसिर सुदी 10 विक्रम संवत् 2053 (19.11.1996) को आत्मार्थी ने ऐलक रूप में एक और कदम आगे रखा। महाराज अभी तक दुपट्टे का उपयोग कर शीत की बाधा से शरीर सुरक्षित रखते थे। अब शीत की बाधा के माध्यम से ऐलक जी कर्म निर्जरा करने लगे। श्री गिरनारजी क्षेत्र से विहार करते हुए हम लोग जेतपुर राजकोट होते हुए पुनः अंकलेश्वर होकर उद्योग नगरी सूरत आ गये।

सूरत नगर में प्रथम बार पञ्चकल्याणक गजरथ सम्पन्न हुए। गजरथ परम्परा बुंदेलखण्ड में प्रायः देखने मिलती रही है, किन्तु संयोग था कि संघ का प्रवास गुजरात में था और आहुरा नगर सूरत में नवीन मंदिर प्रतिष्ठा होनी थी। सभी निमित्तों के कारण सूरतवासियों को गजरथ देखने का सौभाग्य मिला। कार्यक्रम के बाद संघ सूरत से विहार होकर पुनः महुआ आना हुआ। महुआ से आगे विहार किया और गुजरात छोड़कर महाराष्ट्र प्रांत में प्रवेश किया। शीघ्र ही सिद्धक्षेत्र मांगीतुंगी आ गये।

मांगीतुंगी :

महाराष्ट्र प्रांत में बहुत ही अनूठा सिद्धक्षेत्र है। ऊँचे पहाड़ की सीधी खड़ी चढ़ाई है। पहाड़ पर वंदना करने में बहुत आनंद आता है। इस पावन सिद्धक्षेत्र से श्री राम, हनुमानजी जैसे महापुरुष निर्वाणधाम पधारे हैं। यहाँ कुछ दिन वंदना लाभ लेकर धूलिया, पारौला को पार करके संघ ने पुनः मध्यप्रदेश में प्रवेश किया। और बुरहानपुर, खण्डवा तथा सनावद होकर पुनः सिद्धवरकूट आए। कुछ दिन सिद्धवरकूट रुककर पुनः सिद्धोदय क्षेत्र नेमावर आ गये।

नेमावर में मुनि दीक्षाएँ :

ग्रीष्मकाल में परम पूज्य आचार्य श्री से दीक्षित सभी आर्यिकाओं का भी नेमावर आगमन हो गया और उनतीस आर्यिका दीक्षाएँ हुई। नवीन मंदिर का शिलान्यास भी सम्पन्न हुआ। हमेशा की भाँति आर्यिका संघों का चातुर्मास के लिए विहार हो गया और

मुनि दीक्षा के पूर्व प्रवचन करते हुए ऐलक प्रवचनसागरजी

आचार्य श्री का संघ सिद्धोदय क्षेत्र में ही चातुर्मास के लिए स्थापित हो गया। चातुर्मास में सात क्षुल्लक दीक्षाएँ और चौदह आर्यिका दीक्षाओं के बाद मुनि दीक्षा की भी प्रबल संभावनाएं रही। चातुर्मास के तीन मास पूरे होने वाले थे कि ज्ञात हुआ परसों (16अक्टूबर) को मुनि दीक्षा होना है। परन्तु पूर्ण विश्वास तब हुआ जब दीक्षार्थी हम लोगों को अगले दिन का आहार का प्रत्याख्यान करा दिया गया। आश्विन शुक्ल की पूर्णिमा विक्रम संवत् 2054 को दस भव्य मुनि दीक्षाएँ हो गयीं। ऐलक अपूर्वसागरजी, ऐलक प्रशांतसागरजी, ऐलक निर्वेगसागरजी, ऐलक विनीतसागरजी, ऐलक निर्णयसागर, ऐलक प्रबुद्धसागरजी, ऐलक प्रवचनसागरजी, ऐलक पायसागर जी और क्षुल्लक प्रसादसागरजी दिगम्बर मुनिराज के रूप में दीक्षित हो गये।

मुनि दीक्षा के बाद गुरु मुख से नवीन मुनि महाराजों का नामकरण किया गया और क्रमशः मुनि श्री 108 अपूर्वसागरजी, मुनि श्री 108 प्रशांतसागरजी, मुनि श्री 108 निर्वेगसागरजी, मुनि श्री 108

नेमावर में दस मुनि दीक्षा

विनीतसागरजी, मुनि श्री 108 निर्णयसागर, मुनि श्री 108 प्रबुद्धसागरजी, मुनि श्री 108 प्रवचनसागरजी, मुनि श्री 108 पुण्यसागरजी, मुनि श्री 108 पायसागरजी, मुनि श्री 108 प्रसादसागर जी महाराज नाम प्राप्त हुए। सिद्धोदय क्षेत्र नेमावर इसीलिए भी हमेशा याद रहता है कि हम लोगों ने यहीं से षट्खण्डागम का स्वाध्याय प्रारम्भ किया था। मुनि श्री प्रवचनसागरजी षट्खण्डागम को विशेष रुचि और बहुमान के साथ पढ़ते थे और वाचना पर्यन्त कोई एक खाद्य वस्तु का त्याग रखते थे। सिद्धोदय चातुर्मास में सर्वप्रथम षट्खण्डागम की श्री धवल पुस्तक नम्बर चार की वाचना हुई थी। तब महाराज जी वाचना के पूर्व स्वयं भी इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करते थे। तदुपरान्त कक्षा में आते थे। मुनि श्री प्रवचनसागरजी ने श्री धवल पुस्तक नम्बर चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, सोलह के साथ श्री जयधवल पुस्तक एक, दो का स्वाध्याय भी किया था। आगे शेष पुस्तकों का स्वाध्याय करने की प्रबल भावना थी। अभी जब हम कटनी आ रहे थे महाराज ने एक दिन

मुनि दीक्षा के संस्कार करते हुए आचार्य श्री

विहार में मुझसे कहा था, हम दोनों श्री धवल का शेष स्वाध्याय करेंगे।

दीक्षा के बाद प्रथम मुनि प्रतिक्रमण पूज्य आचार्यश्री जी के साथ

नेमावर से विहार कर श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र मुक्तागिर छिन्दवाड़ा बीनाबाराह आदि छोटे बड़े स्थानों में शीत, ग्रीष्मकालीन प्रवास करते हुए सागर पहुँच गये और 1998 चातुर्मास भाग्योदय तीर्थ, सागर में हुआ। भाग्योदय तीर्थ, सागर परम पूज्य आचार्यश्री के आशीर्वाद प्रेरणा से उदित वह संस्थान है, जहाँ रोगियों को आरोग्य प्राप्त करने के अनेक साधन उपलब्ध हैं। वहीं धनवानों को अपनी चंचला लक्ष्मी के त्याग पूर्वक औषध दान करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। चातुर्मास में हम लोगों ने चारित्र शुद्धि व्रत (बारह सौ चौंतीस उपवास) प्रारम्भ किए। अन्य महाराज कहते थे आप इतने उपवास क्यों करते हो ? इतनी जल्दी उपवास करने की क्या पड़ी है? तब प्रवचनसागरजी का जवाब होता था- भैया! समय का कोई भरोसा नहीं है, जितने उपवास हो जावें, वही अपने है। महाराज वेला तेला रूप उपवास नहीं करते

थे। एक-एक उपवास करते थे, उनका सोचना था, लगातार उपवास करने में औसतन कम उपवास हो पाते हैं और शक्ति अधिक खर्च होती है। बड़प्पन के साथ कहा करते थे कि हमारी तो छोटी पूँजी है, इसलिए एक ही उपवास करता हूँ। महाराजजी को कान का कष्ट भी कम न था, कान के पर्दे में छेद था, मवाद का कान से निष्कासन भी उनको कष्टप्रद रहता था। अनेक बार तो सहन करने में ज्यादा कठिनाई होती थी पर क्या कर सकते थे सहन करने के सिवाय।

मुनि प्रवचनसागरजी मुनि निर्णयसागर के साथ

बुंदेलखण्डी कहावतों के लिए भी आप प्रसिद्ध थे। बुंदेलखण्डी कहावतों के कारण आपका धर्मोपदेश रोचक होता था। यदि कोई अपनी गृहस्थी की परेशानी लेकर आता था, तब महाराज उनको समझाते थे घर घर के मटियारे चूल्हे कहावत का अर्थ है - सब गृहस्थों के यहाँ एक जैसी दशा है अर्थात् सब घर की एक सी कहानी

है। अतः आप तो विवेकी हैं, धर्म की शरण ग्रहण करो, इसी में कल्याण है। इसी प्रकार कहावत कहा करते थे - बड़ा शोर सुनते थे हाथी की दुम का पास जाकर देखा तो सुतली बंधी थी अर्थात् प्रस्तुति तो बड़े जोर शोर से की गयी पर प्रस्तुति का अंश मात्र ही दृष्टिगोचर हुआ। इसी प्रकार बहुत सारी कहावतें आपको बचपन से कंठस्थ थीं। चारों अनुयोगों (प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग) के साथ- साथ आप चरणानुयोग क्रियाकोश में विशेष मर्मज्ञ थे। जब कभी किसी धर्मात्मा को कोई शंका होती थी तो विशेष रूप से चरणानुयोग क्रियाकोश के शंकाकार हम दोनों के पास आते थे।

इंदौर में मुनि प्रवचनसागरजी

उनको महाराज के द्वारा उचित समाधान एवं सलाह प्राप्त होती थी। मुनि श्री प्रवचनसागरजी क्रियाकोश की बातें अकेली नहीं करते थे। विशेष आचरण भी करते थे। आश्रम की भाँति मुनि दीक्षा

के बाद भी सप्तरसी पालन करते रहे हैं। सोमवार को वनस्पति, मंगलवार को मीठा, बुधवार को संभव होता था तो घी अन्यथा कोई एक रस का त्याग, गुरुवार को दूध, शुक्रवार को दही, शनिवार को तेल और रविवार को नमक का त्याग करके आहार लेते थे। सामान्य से नमक मीठे का प्रायः त्याग रहता ही था। यदि अष्टमी चतुर्दशी के दिन विहार आदि में उपवास नहीं होता था तो वनस्पति का अवश्य प्रत्याख्यान करके आहार करते थे।

आहार देते हुए परिवारी जन

इस प्रकार मुनि प्रवचनसागर जी के यम-नियमों का लेखा-जोखा कहाँ तक रखूँ? वह तो त्याग धर्म की चलती-फिरती मूर्ति थे। मुनि प्रवचनसागरजी मात्र बाहरी त्याग के आदी न थे। अंतरंग साधना के रूप में उत्कृष्ट सामायिक करना, समयसार आदि ग्रन्थों का प्रयोग (पाठ, चिंतन आदि) आपकी दैनिक विशेषता थी। वैयावृत्ति नामक

अंतरंग तप में भी मित्र मुनि प्रवचनसागरजी अंतरंग से संलग्न रहते थे। मुझे जहाँ तक ख्याल है मेरे तीन, चार, पाँच उपवासों की पारणा में मुनि प्रवचनसागरजी हमेशा उपस्थित रहे थे।

अमरकंटक में चातुर्मास 2003

चर्चा चल रही है कि मुनि प्रवचनसागरजी वैयावृत्ति के अंतरंग तप में अंतरंग से संलग्न रहते थे तो मुझे याद आ गया अमरकंटक का चातुर्मास 2003। कर्म किसी को क्षमा नहीं करते हैं, जिसने जैसा कर्म किया है, वैसा ही ईमानदारी के साथ फल देते हैं। युग के प्रारम्भ में भगवान ऋषभदेव को आधे वर्ष तक मुनि अवस्था में आहार का लाभ नहीं मिला, तो फिर हम जैसे सामान्य मनुष्य की क्या बात? असातावेदनीय कर्म की उदीरणा के फलस्वरूप मेरा स्वास्थ्य खराब हो गया। तब पूरे चातुर्मास में दो-तीन बार पंद्रह दिन, आठ दिन, चार दिन तक अच्छे अनुभाग के साथ बुखार आया। शरीर का भार दस बारह किलोग्राम कम हो गया। गले में दर्द, सिर में दर्द आदि अनेक परेशानियाँ उत्पन्न हो गयीं। अनेक चिकित्सा करने वाले चिकित्सकों ने शरीर का परीक्षण किया। परन्तु किसी को भी बीमारी हाथ न लगी। डॉ. अमरनाथजी ने भी अमरकंटक रहकर कई चिकित्सकों से सम्पर्क किया और परीक्षण कराया। अंत में आचार्यश्री जी का आशीर्वाद और संघ के सभी महाराजों की एवं सभी साधकों की सद्भावना से औषधि ने अनुकूल कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। मुनि श्री प्रवचनसागर जी के द्वारा मेरे अस्वस्थ काल में मुझे प्रतिक्रमण कराना, वैयावृत्ति करना, रात में जागना उनकी दैनिकचर्या बन चुकी थी। आप जब किसी साधक की ब्रह्मचारी के द्वारा औषधि कराते थे तो कार्य के

उपरान्त ज्ञात होता था कि यह महाराज के द्वारा किया हुआ वैयावृत्ति कार्य है। अतः महाराज कार्य करते थे विज्ञापन नहीं। ऐसे मित्र का साथ प्रतिकूल परिस्थिति में भी हमेशा बना रहा। सभी के साथ रहकर आपने काफी लंबे समय तक वैयावृत्ति नामक महान् कार्य किया। सत्य तो यह है कि हमारे साधक, साथियों और महाराजों को वैयावृत्ति की शिक्षा अपने ही गुरु से मिली है। परम पूज्य आचार्य श्री जी ने अपने गुरु आचार्य श्री ज्ञानसागर जी की जो सेवा वैयावृत्ति की है वह सबको सदा आदर्श है, आगे भी रहेगी। मुनि श्री प्रवचनसागरजी ने बीमारी में मेरा पूरा साथ दिया, साहस दिया और समय तो दिया ही अन्यथा मेरी तो धारणा बनती जा रही थी कि समाधि की तैयारी करो अब शरीर अधिक साथ नहीं देगा।

दशलक्षण (पर्युषण)पर्व सानन्द सम्पन्न हो चुके थे। पूर्व की अपेक्षा मेरे स्वास्थ्य में काफी सुधार प्रतीत हो रहा था। चिकित्सकों की सलाह अनुसार मैंने थोड़ा चलना फिरना प्रारम्भ कर दिया था। लगभग 27-28 सितम्बर का समय होगा, बिल्कुल सही तारीख तो स्मरण नहीं रह पायी है मैं और दो ब्रह्मचारी भाई शौच क्रिया के उपरान्त लौट रहे थे, संयोग से रास्ते में मुनि श्री प्रवचनसागरजी मिल गये, वह भी शौच क्रिया के उपरान्त हाथ पैर धो रहे थे। हम लोग रुक गये कि महाराज को साथ लेकर चलेंगे। महाराज की मुझसे उस मसय अधिक दूरी न थी, बस, मेरी दृष्टि बाजू में पहाड़ी की ओर गयी और इतने में ही सामने के रास्ते से एक श्वान (कुत्ता) आया और उसने जल्दी से मुनि श्री प्रवचनसागरजी को काट लिया। वह काटकर भाग गया हम लोगों को बड़ा विस्मय हुआ, एक क्षण में श्वान कहाँ

से आ गया, काट भी लिया और भाग भी गया। हम तीन लोग देख भी न पाये। इस समय मेरे लिए समझ में नहीं आ पा रहा था उस समय हम क्या कर्त्तव्य करें। महाराज से कहा जल्दी धर्मशाला चलिए और हम सब लोग धर्मशाला प्रांगण आ गये। मुझे यह घटना हर प्रकार से गंभीर प्रतीत हो रही थी परन्तु मुनि श्री प्रवचनसागरजी को संदर्भित घटना सहज ही प्रतीत हो रही थी। महाराज ने धर्मशाला प्रांगण आकर सर्वप्रथम देव वंदना की,किन्तु मुझे सर्वप्रथम आचार्यश्री से घटना का प्रतीकार के लिए मार्गदर्शन प्राप्त करना परमावश्यक लगा। इसीलिए मैं ऊपर आचार्यश्री के पास आ गया और शीघ्र निरवद्य उपचार किये गये और सभी को विश्वास हो गया कि अब घटना की कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी। सभी सामान्य होकर स्वाध्याय साधना में संलग्न हो गये। मेरा स्वास्थ्य लाभ चलता रहा और अमरकंटक चातुर्मास समाप्त हो गया। जब कभी धर्मात्मा पर आपत्ति आती है तो धर्म ही आपत्तिमय समझना चाहिए। आचार्य श्री समंतभद्र महाराज के अनुसार-

व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः सवाहनं च गुणरागात् ।
वैयावृत्यं यावानुपग्रहोऽन्योपि संयमिनाम् ॥112॥ र. श्रा.॥

अर्थात्-गुणानुराग से संयमी की आपत्ति को दूर करना, पैर मर्दन करना और भी अन्य जितने सेवा कार्य हैं वह सब वैयावृत्ति नामक कर्त्तव्य जानना चाहिए। इसीलिए सभी चाहते थे कि मेरा शीघ्र और पूर्ण स्वास्थ्य ठीक हो जावे तथा दूसरे की चिंता, चिंता नहीं साधर्मी वात्सल्य है। परम वात्सल्य भाव ही तीर्थंकर जैसे महान् पद को प्राप्त कराता है। चातुर्मास समाप्त हुआ, अमरकंटक क्षेत्र में दो सौ

आचार्य श्री से मयूर पिच्छिका ग्रहण करते हुए मुनि प्रवचनसागरजी

चालीस क्विंटल भार युक्त प्रतिमा वेदी पर विराजमान हुई। यह प्रतिमा भगवान ऋषभदेवजी की अष्टधातु से निर्मित है। जो एक सौ सत्तर क्विंटल भार युक्त अष्टधातु के कमल पर विराजमान हुई है। इसी के एक दिन पूर्व 5/11/2003 को हम सभी का पिच्छिका परिवर्तन हुआ।

पिच्छिका परिवर्तन के कुछ दिन बाद आचार्य श्री जी ने विचार करके मुझे बुलाया, मुनि श्री योगसागर जी के माध्यम से फिर मुनि श्री प्रवचनसागरजी को भी बुलाया गया। हमें ज्ञात तो था कि मेरे स्वास्थ्य को लेकर आचार्य श्री चिंतन कर रहे हैं। बड़ों की यही महानता होती है कि वह छोटों का सब प्रकार से ख्याल रखते हैं। परम पूज्य आचार्यश्री ने हम सभी शिष्यों के ऊपर शारीरिक दृष्टि से भी सदा अनुग्रह बनाये रखा है। जैसे एक माँ अपने बालक पर हर प्रकार से अनुग्रह करती रहती है। इसी प्रकार गुरु का उपकार भी सदा महान् होता है और शिष्य सदा ऋणी रहता है वह कभी भी गुरु के प्रति ऋण मुक्त नहीं हो सकता है।

परम पूज्य आचार्यश्री की आज्ञानुसार पूज्य मुनि श्री योगसागरजी महाराज के साथ हम दोनों परम पूज्य आचार्यश्री के निकट बैठ गये। तारीख थी 13/11/2003 मध्याह्न काल की सामायिक के बिल्कुल पहले पूज्य आचार्यश्री ने कहा -निर्णयसागरजी के स्वास्थ्य संदर्भ में कुछ विचार किया है। संघ बड़ा होने से विहार में ठीक से वैयावृत्ति संभव नहीं होती है। अतः निर्णयसागरजी के साथ प्रवचनसागरजी को भी साथ रख देते हैं। एक डेढ़ माह कटनी फिर अमरपाटन और बाद में ग्रीष्मकाल सतना में रहकर स्वास्थ्य लाभ ले सकते हैं हमने आचार्य श्री से निवेदन किया कि संघ में रहकर ही स्वास्थ्य लाभ लेना चाहते हैं, पर अंत में हम दोनों ने गुरुआज्ञा मान ली। सामायिक का समय हो जाने से हम सभी लोग सामायिक में बैठ गये। विश्वास था कि सामायिक के बाद समय मिलेगा और परम पूज्य आचार्य श्री से अच्छे से चर्चा करेंगे पर संयोग से समय नहीं मिल पाया और सामायिक के उपरान्त आचार्यश्री का विहार पेण्ड्रा रोड के लिए हो गया। थोड़ी दूर तक पूज्य आचार्य श्री और महाराजों को हम दोनों छोड़ने गये।

गुरु को छोड़ने का भाव नहीं था, इसलिए आँखें न चाहते हुए भी नम हो गयीं।

हम दोनों ने परम पूज्य आचार्य श्री की तीन परिक्रमा की और सिद्ध, श्रुत और आचार्यभक्ति के साथ विदाई दी और गुरु वियोग सामने आ गया। मुनि श्री प्रवचनसागरजी को गुरु और संघस्थ महाराजों का वियोग कुछ ज्यादा ही अनुभव हो रहा था। मानो उनको पूज्य

मुनि श्री योगसागरजी, मुनि निर्णयसागर एवं प्रसादसागर जी महाराज के साथ मुनि प्रवचनसागरजी

आचार्यश्री तथा महाराजगण अब कभी भी नहीं मिलेंगे, अर्थात् जैसे सब हमेशा के लिए छोड़कर चले गये हों। परन्तु बाद में समझ पाया कि कभी-कभी काल्पनिक ज्ञान भी बिल्कुल सच निकल जाता है और हम दोनों पुनः लौटकर धर्मशाला आ गये। मेरा मन था, एक दिन बाद विहार करें परन्तु महाराज की भावना अनुसार हम दोनों ने भी उसी दिन 13.11.2003 को विहार करने का तय कर लिया। आश्रम प्रतिमा मण्डल सहित सभी ब्र. बहिनों से सभी ब्र.भाइयों से हम दोनों ने उत्तम क्षमाधर्म का आदान-प्रदान किया। सभी ने सभी को क्षमा किया क्योंकि बड़े संघ में सभी का मिलना संभव होता है। बड़े संघ से पृथक् होने पर मिलना असंभव तो नहीं पर कठिन अवश्य होता है। हमने धर्मशाला कक्ष को छोड़कर मंदिर आकर देव वंदना की तदुपरान्त विहार कर दिया। सभी भाई बहिनों ने अपने नेत्रों से अश्रु वर्षा करते हुए विदाई दी। सभी लोग बहुत दूर तक हम दोनों को छोड़ने आए। ब्र. भाइयों ने तो ऐसे विदाई दी जैसे सब कुछ उनके पास से छूटकर बहुत दूर जा रहा है।

अब पूज्य आचार्यश्री और संघ के महाराजों की स्मृतियों की भाँति हम दोनों के पास अमरकंटक की स्मृतियाँ शेष थीं। दोनों स्मृतियों को ताजा करते-करते अमरकंटक से पंद्रह किलोमीटर दूर आ गये। रात्रि विश्राम और आहार-विहार करते हुए दो, तीन दिन के बाद हम बुढ़ार आ गये। बुढ़ार समाज ने धर्म लाभार्थ शीतकालीन वाचना का निवेदन किया। बुढ़ार में अष्टमी पर्व आ गया इसलिए मुनि श्री प्रवचनसागरजी को हमेशा की तरह उपवास करने की इच्छा हो गयी। मुझसे पूछा कि उपवास कर लूँ। मैंने कहा जब तक विहार करेंगे तब तक आपको उपवास नहीं करना है। महाराज ने प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। महाराज की शारीरिक सुस्ती भी दृष्टिगोचर हो रही थी, लग रहा था महाराज स्वयं अस्वस्थता व्यक्त करने लगे पर सामान्य कब्जियत समझ कर हमने आगे कटनी की ओर विहार कर दिया। एक दो दिन के उपरान्त उमरिया पहुँच गये। तब ऐसा लगा किसी औषधि के माध्यम से महाराज का स्वास्थ्य ठीक करना चाहिए। ब्र. रानू के माध्यम से आहार के समय औषधि दी गयी परन्तु औषधि का कोई सकारात्मक परिणाम सामने नहीं आ सका। इसीलिए कर्म सिद्धान्त में कथन है कि कर्मों की उदीरणा के समय निमित्त सहकारी नहीं हुआ करते हैं। जैसे बाढ़ के समय नदी पार करना कठिन होता है। उमरिया से भी हमारा विहार हो गया। विहार करके चंदिया ग्राम में रात्रि विश्राम किया। महाराजश्री का कष्ट बढ़ता जा रहा था। महाराज समता से कष्ट सहन करते जा रहे थे और हम दोनों कटनी की ओर बढ़ते जा रहे थे। महाराज श्री प्रवचनसागर जी का अनुभव था कि इस प्रकार के कष्ट की अनुभूति पहले कभी नहीं हुई। रास्ते में

विहार स्थगित करना भी कठिन था क्योंकि कटनी के पहले समाज नहीं है इसलिए कटनी जल्दी आना आवश्यक भी था महाराज को बार-बार सहानुभूति रूप में हम लोग बोलते जा रहे थे, विहार की थकान है, विहार रुकने पर सब ठीक हो जावेगा। परन्तु मुझे नहीं मालूम था कि निकट भविष्य में क्या घटना घटने वाली है। हम लोगों को अवधि आदि प्रत्यक्ष ज्ञान तो है नहीं। हमें तो बस इतना मालूम था कि स्वस्थ अवस्था में श्री प्रवचनसागरजी मेरी वैयावृत्ति बावत आए हैं उनको भी हर पल मेरी चिंता रहती थी। श्रेष्ठ से श्रेष्ठ तरीके से वैयावृत्ति करने का भाव लेकर वह संघ से आए थे। चंदिया से ग्राम विलायत कला आए। विलायत कला ग्राम आने पर कटनी के सुधी श्रावकों ने हमारी अगवानी की और पड़गाहन कर आहार कराया। आहार के पश्चात् महाराज के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में श्रावकों को भी ज्ञात हो गया। दूसरे दिन ही कटनी से वैद्य रघुवरप्रसादजी को लाया गया। स्वास्थ्य का परीक्षण किया गया, परीक्षण के उपरान्त मेरी वैद्य जी से चर्चा हुई। वैद्यजी का कथन था कि महाराज अस्वस्थ अवश्य हैं पर कोई गंभीर बात नहीं है जल्दी स्वस्थ हो जावेंगे। मझगंवा ग्राम में आहार लेकर हमने सामायिक के बाद विहार कर दिया। आज वैद्यजी ने स्वयं महाराज को आहार के समय औषधि सेवन करायी। वैद्यजी ने कहा औषधि का लाभ धीरे-धीरे होगा। हम दोनों विहार करके कटनी नगर में प्रविष्ट हो गये। मगसिर शुक्ला एकम (24.11.2003) की शाम के समय प्रवेश किया।

हमने सर्वप्रथम काँच के मंदिर के दर्शन किए। मंदिर में मुनि श्री प्रवचनसागरजी ने अस्वस्थ होने के कारण कहा, मैं मंच पर नहीं

बैठूँगा मैंने कहा कि आपके स्वास्थ्य अनुकूल ही कार्य करेंगे। मंदिर से बोर्डिंग पहुँचे, श्रावकों ने मंचासीन होने का निवेदन किया और श्रावकों की भावनाओं ने महाराज का मन भी मंचासीन हेतु तैयार कर दिया। श्रावकों की भावनाओं ने मानो महाराज के कष्ट को गौण कर दिया और हम दोनों मंचासीन हो गये। मंच संचालक महोदय ने मंच का संचालन किया। जब प्रवचन का प्रसंग आया तो मैंने कहा महाराज थोड़ा आप भी सभा को धर्मोपदेश दें। मुनि श्री प्रवचनसागरजी ने संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित उपदेश दिया। सर्वप्रथम मंगलाचरण किया तदुपरान्त कहा – हम लोग अमरकंटक से विहार करके कटनी आए हैं कटनी नगर तो पहले से ही भाग्यशाली है। आचार्य श्री ससंघ यहीं से अमरकंटक गये थे, पहले भी पूज्य आचार्य श्री का और अन्य मुनि आर्यिका संघों का पावन सान्निध्य कटनी नगर को मिलता रहा है। हम अभी तो चलकर आये हैं जैसा हमारा और आपका संयोग होगा धर्म लाभ मिलेगा। प्रत्येक जीव को अपनी शक्ति अनुसार धर्म क्षेत्र में अपना कदम अवश्य बढ़ाना चाहिए, तभी हम कल्याण कर सकेंगे। आत्मा परमात्मा बन सकेगी, बस आज इतना ही। आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज की जय। महाराज के बाद मैंने प्रवचन किया।

हम दोनों प्रवचनों के बाद विश्राम करने हेतु कमरे में आ गये। कुछ समय बोर्डिंग में रुककर धर्मशाला आ गये। शाम का दैवसिक प्रतिक्रमण किया, आचार्य भक्ति की और सदा की भाँति हम दोनों भाई एक ही कक्ष में सामायिक में लीन हो गये। सामायिक के बाद कौन किसकी सेवा करे, क्योंकि दोनों बीमार थे, विहार के कारण थकान और भी बढ़ गई थी। फिर भी तत्काल तो महाराज श्री ही

अधिक अस्वस्थ थे हमने उनकी सेवा करना ही उचित समझा परन्तु महाराज ने मुझसे सेवा न करायी तब ब्रह्मचारियों ने उनकी वैयावृत्ति की। वैयावृत्ति से महाराज को थोड़ी राहत मिली और निद्रा भी आ गयी। सुबह 25/11/2003 को हम दोनों दैनिक क्रियाओं से निवृत्त हो गये और मंदिर आकर मैंने प्रवचन आर्यिका, प्रवचन के उपरान्त आहार को निकलने के लिए हम दोनों पुनः मंदिर गये। मंदिर पहुँच कर मैंने कहा पहले महाराज आप निकलिए मैं आपको आहार कराने चलूँगा। परन्तु महाराज ने कहा आप स्वयं अस्वस्थ हैं। अतः पहले आप ही आहार के लिए निकलिए। मेरे साथ में ब्रह्मचारी तो आहार में जावेंगे ही अतः आप निश्चिंत होकर जाइये। मुनि प्रवचनसागरजी ने अस्वस्थ अवस्था में भी मुझे पहले निकाल कर ही आहार को निकलना पसंद किया। सदा की तरह आज भी महाराज ने मेरे प्रति विनयाचार को स्मरण बनाये रखा। महाराज को आहार के साथ वैद्यजी ने स्वयं औषधि दी। शारीरिक कमजोरी की वजह से आहार पूरा न हो सका। महाराज थोड़ा आहार जल ही लेकर बैठ गये। अभी तक औषधि का कोई लाभ नहीं दिख रहा था।

शायद किसी श्रावक का प्रश्न हो सकता है कि साधु का औषधि से क्या प्रयोजन? उसको तो रोग परीषह सहन करना चाहिए ? ऐसा प्रश्न करना उचित नहीं है। मूलाचार आदि शास्त्रों में साधु को जैसे आहार का निषेध नहीं है ठीक वैसे ही निर्दोष रीति से औषधि का भी किसी शास्त्र में निषेध नहीं है, परन्तु चार दानों में औषधि दान अवश्य कहा है। जो श्रावक का कर्त्तव्य है। दूसरी बात बाईस परीषह साधु के अट्ठाईस मूलगुणों में नहीं आते हैं। ताकि जिन्हें सहन करना

ही पड़े। परीषह तो विशेष संवर-निर्जरा को प्रत्यय हैं, साधु अपनी शक्ति अनुसार सहन करता भी है। सहन न करें तो कोई साधुत्व में दोष भी नहीं है। मुनि प्रवचनसागरजी महाराज वह साधक थे, जिन्होंने मूलगुणों का तो निर्दोष पालन किया ही है। साथ ही पंचमकाल के साधु होकर भी उत्तर गुणों का भी यथायोग्य पालन करते थे। अमरकंटक में श्वान (कुत्ता) के काटने पर भी कोई भी सदोष (सावद्य) चिकित्सा स्वीकार नहीं की। सच्चे साधक को जीवन नहीं, अहिंसा धर्म ही सर्वोपरि होता है। परन्तु धर्मार्थ निर्दोष औषधि ग्रहण करना ही चाहिए क्योंकि रोग प्रतिकार की दशा में आचार्यों ने सल्लेखना का निषेध किया है, असाध्य रोग की स्थिति में सल्लेखना करने को कहा है। इसलिए महाराज को औषधि के माध्यम से स्वस्थ करने का पुरुषार्थ चलता रहा, किन्तु अनुकूल भाग्य के होने पर ही पुरुषार्थ अनुकूल कार्य करता है।

26 नवम्बर को हम दोनों पुनः आहार के लिए मंदिर गये। विशेष रूप से मैंने कहा आज तो आपको पहले निकलना ही पड़ेगा और मैं साथ में आपको आहार कराने भी चलूँगा। महाराज शारीरिक दृष्टि से पूर्व की अपेक्षा और भी कमजोर हो गये थे। मैंने साथ चलकर महाराज को चौके तक पहुँचाने में सहयोग किया। नवधाभक्ति पूर्वक महाराज का आहार प्रारम्भ हुआ। प्रतिदिन की भाँति सर्वप्रथम जल अंजुलि में पहुँचा तो ऐसा लगा महाराज जल पीना नहीं चाहते हैं। प्रयास करने पर आपने औषधि और अल्पतम मात्रा में आहार जल ग्रहण किया। आज, कल की अपेक्षा और भी कमजोरी बढ़ गयी। परिणाम स्वरूप महाराज अधिक खड़े रहने की शक्ति के अभाव में

शीघ्र बैठ गये। मुझे स्थिति नियंत्रण से परे लगने लगी थी परन्तु साहस खोना समस्या का समाधान नहीं था। सोचा, अब और सावधान रहेंगे। आहार में जल की अनिच्छा से ऐसा प्रतीत हुआ, शायद अमरकंटक में श्वान कृत उपसर्ग का ही असर हो गया है और पुरानी घटना आँखों के सामने ताजा होने लगी।

समाधि के समय धर्मचर्चा करते समय मुनि प्रवचनसागरजी

27 नवम्बर को सुबह की रेलगाड़ी से डॉ. अमरनाथजी सागर से आ गये। अमरनाथजी ने सदा की तरह शांतिनाथ भगवान की जय बोलकर संकेत दिया कि मैं आ गया हूँ। मुझे लगा अब कार्य में अनुकूल गति मिलेगी। अमरनाथ जी ने सर्वप्रथम हमसे यही पूछा कि महाराज को कुत्ते ने कब काटा था। मैंने कहा - लगभग दो सवा दो माह हो गये। अमरनाथजी ने बतलाया कि हम किसी एम.डी. डॉक्टर से परीक्षण करा लेते हैं। सचमुच में कुत्ते कृत उपसर्ग का प्रतिकूल असर तो नहीं हो गया है। तत्काल कब्जियत ठीक करने हेतु

मुनि निर्णयसागर के साथ मुनि प्रवचनसागरजी

अरण्डी का तेल पेट पर लगाया गया परिणामतः थोड़ा शौच होकर हल्कापन अनुभव होने लगा। हम सबको प्रसन्नता हुई अब आराम लग जावेगा। महाराज स्वयं कष्ट में थे पर महाराज ने परोपकार को विस्मरण नहीं किया था क्योंकि मेरा भाव था अब प्रवचन करने का समय नहीं हैं मित्र की अधिकाधिक वैयावृत्ति करने का समय है। महाराज से कहा आज प्रवचन नहीं होना है। आपको जल्दी आहार के लिए निकलना है। महाराज तैयार नहीं हुए, कहा थोड़ा प्रवचन कर आना। मैं आपके आने पर ही आहार को निकलूँगा। मैंने बिना इच्छा के महाराज की भावना रखने के लिए थोड़ा प्रवचन कर दिया और शीघ्र ही धर्मशाला आ गया। डाक्टर वैश्य भी धर्मशाला में आ चुके थे। डॉ. साहब ने कहा आहार देखकर ही रोग का परीक्षण संभव होगा। आप महाराज को आहार कराइए। महाराज को आहार

के लिए जल्दी निकाला। आहार प्रारम्भ होते ही डाक्टर वैश्य ने रोग समझ लिया। डाक्टर अमरनाथजी के माध्यम से डाक्टर वैश्य ने मुझे बुलाया और एकान्त में चर्चा की। डाक्टर ने कहा मुनि श्री का परीक्षण कर लिया है। महाराज को रेबीज (कुत्ते के काटने का प्रतिकूल असर) के पूर्ण लक्षण स्पष्ट प्रकट हो गये हैं। अतः महाराज का चार या पाँच दिन का ही जीवन शेष है। मैंने अपना साहस रखकर पूछा इसका कोई, कहीं पर भी समाधान हैं ? उत्तर मिला– दुनियाँ में रेबीज का किसी जगह कोई भी समाधान नहीं है। फिर भी जबलपुर मेडीकल कालेज में भर्ती कराकर इंजेक्शन ड्रिप प्रयोग कर लें। जानकारी के लिए मैंने पूछा इससे क्या लाभ होगा ? उत्तर मिला – इससे दो तीन दिन उम्र बढ़ सकती है परंतु गारंटी कुछ भी नहीं दे सकते हैं। मैंने कहा कि जैन साधु की भूमिका अनुसार ही कार्य होगा। अतः महाराज का अब हम आध्यात्मिक उपचार ही करेंगे और डाक्टर वैश्य अपने घर लौट गये। मैंने जितने प्रयास संभव थे, उतने प्रयास किए। भोपाल, सागर, जयपुर आदि स्थानों पर वैद्यों से सलाह आदि का कार्य किया गया और श्रावकों ने भी वैद्यों को कटनी लाने के भरपूर प्रयास किए। संयोग से मुनि श्री समतासागर जी, मुनि श्री प्रमाणसागरजी, ऐलक निश्चयसागरजी का बहोरीबंद में ही प्रवास था। डाक्टर अमरनाथ जी को बहोरीबंद भेजकर महाराज त्रय को समाचार दिए। महाराज त्रय ने समाचार सुनकर कटनी के लिए तत्काल गमन कर दिया।

बहोरीबंद :

अतिशय क्षेत्र बहोरीबंद कटनी जिले में कटनी सिहोरा सड़क मार्ग पर स्थित है। यहाँ भगवान शांतिनाथ जी की अति मनोज्ञ अतिशयकारी खड्गासन प्रतिमा विशेष दर्शनीय है। इधर मुनि श्री प्रवचनसागरजी स्वयं के शरीर की स्थिति स्वयं ही समझ चुके थे जबकि डाक्टर के बताने पर भी वास्तविक स्थिति तत्काल महाराज को बताना उचित समझा। यद्यपि महाराज ने मुझसे पूछा भी कि डाक्टर आया था उसने क्या बताया? मैंने कहा - आपके स्वास्थ्य का परीक्षण कर लिया है किन्तु डाक्टर की रिपोर्ट आने में समय लगता है जो भी होगा समय से आपको अवगत करा दिया जावेगा। आप तो हमेशा की तरह साहस बनाये रखिए। महाराज को तो पूरा अनुमान लग गया था कि चातुर्मास के समय कुत्ते ने काटा था, उसी की प्रतिक्रिया है। अतः शरीर छूटने के पूर्व समाधिमरण का पुरुषार्थ श्रेयस्कर है इसीलिए मेरे सामने समाधि का बारम्बार निवेदन करने लगे। ऐसे में मेरे सामने एक साथ दो महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ थीं। प्रथम स्वयं के साहस को स्थिर रखूँ , दूसरा प्रवचनसागरजी के साहस को बढ़ाता रहूँ। महाराज की परीक्षा तो थी ही पर मेरे जीवन की सबसे बड़ी परीक्षा थी। 27 नवम्बर को जब स्थिति स्पष्ट हो गयी तो आशीर्वाद और समाधि का मार्गदर्शन प्राप्त हो जावे, इस हेतु परम पूज्य आचार्य श्री को पत्र लिखकर ब्रह्मचारी प्रदीपजी सागर व अन्य श्रावकों को अकलतरा प्रेषित किया। परम पूज्य आचार्यश्री इस समय अकलतरा (छत्तीसगढ़) में विराजमान थे। पत्र जो मैंने आचार्य महाराज को प्रेषित किया वह इस प्रकार था -

कटनी 27/11/2003

परम पूज्य आचार्य श्री जी,

हम दोनों शिष्यों का सादर नमोऽस्तु।

हम लोग आपकी आज्ञानुसार 24/11/2003 को कटनी आ गये हैं। मुनि श्री प्रवचनसागरजी का स्वास्थ्य कटनी आने के दो तीन दिन पूर्व से ही खराब हो गया है। जैसे संभव हुआ विहार करके कटनी आ गये। कटनी के पूर्व ही वैद्यजी को बुला लिया था, औषधि भी चालू है पर आराम की जगह स्वास्थ्य प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा है। कमर के नीचे का भाग लगभग शून्य हो गया है। 100-101 डिग्री सेल्सियस बुखार आया था, पर अब नहीं है। डाक्टर वैश्य एम.डी. कटनी ने भी परीक्षण कर स्पष्ट कह दिया है कि रेबीज हो गया है, मात्र चार पाँच दिन का जीवन शेष है। तीन लोगों के द्वारा पकड़ कर सहारा देने पर ही महाराज का खड़ा होना संभव हो गया है और अब चलने में भी कष्ट होने लगा है। महाराज समाधिमरण हेतु बारम्बार निवेदन कर रहे हैं। कर्मोदय से मैं भी अकेला पड़ गया हूँ। ब्र. पवन के साथ ब्र. रानू, ब्र. अमित बुढ़ार को महाराज के स्वस्थ होने तक यहीं रख लिया है। महाराज पुनः व्रतों के साथ आपके चरणों में समाधिमरण का निवेदन कर रहे हैं। मेरा आपसे नम्र निवेदन है कि आप शीघ्र ऐसा आशीर्वाद और मार्गदर्शन प्रदान करें, जिससे हम दोनों स्वस्थ होकर साधना, धर्म प्रभावना कर सकें। मेरा चर्म रोग औषधि के प्रयोग से शांत हो रहा है।

सभी मुनिराजों सहित आपके चरणों में हम दोनों का पुनः पुनः नमोऽस्तु पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में ...

आपके आज्ञाकारी शिष्य

हम दोनों

मुनि श्री प्रवचनसागरजी भी कुछ लिखना चाहते थे। मैंने कहा लिखो, उन्होंने भी लिखा –

परम पूज्य गुरुदेव के श्री चरणों में,

प्रतिदिन का बारम्बार नमोऽस्तु।

आपकी आज्ञानुसार हम कटनी तक पहुँच गये हैं। मेरे स्वास्थ्य के बारे में महाराज जी ने लिख ही दिया है। कमर के नीचे का भाग सुन्न सा हो गया है। चार लाईन लिखने में भी कष्ट का अनुभव कर रहा हूँ। मेरी आपके श्री चरणों में प्रार्थना है कि अपने पास बुलाकर मरण को जीतने वाले समाधिमरण अर्थात् नश्वर देह का विसर्जन आपके श्री चरणों में करना चाहता हूँ। पराधीन चर्या कब तक चलेगी। आशा है मेरी अर्जी स्वीकार होगी। विगत जीवन में किए अपराधों की आपसे एवं वात्सल्य भाव रखने वाले सभी साधुओं से क्षमा प्रार्थना।

आपका

प्रवचन

27 नवम्बर शाम को महाराज की शारीरिक स्थिति और भी कमजोर दिखी। महाराज स्वयं शारीरिक स्थिति को समझ चुके थे। पत्र लिखने के उपरान्त महाराज ने मुझसे कहा कुछ एकान्त में आपसे चर्चा करना है। सभी दर्शनार्थियों को भेजकर हम दोनों एकान्त कक्ष में आ गये। मैंने महाराज को कक्ष में लेटा दिया।

महाराज ने चर्चा प्रारम्भ की – मैं और आप लंबे समय से साथ रहे हैं। मेरा शरीर अब कोई काम का नहीं बचा है, लगता है

अमरकंटक में पागल कुत्ते ने काटा था, उसी का प्रतिकूल असर है। अतः आपके ही सान्निध्य में समाधिमरण करना चाहता हूँ। आपका मैंने कोई जीवन में अविनय किया हो, आपको कोई किसी प्रकार का कष्ट दिया हो, उसके लिए मैं आपसे मन वचन कायपूर्वक क्षमा याचना करता हूँ। कृपया मुझे क्षमा प्रदान करें, समाधि प्रदान करें।

मैंने कहा मेरा तो आपने हमेशा ख्याल रखा है। कष्ट और अविनय की ऐसी कोई बात ही नहीं है। यदि मैंने कभी किसी प्रकार का आपके साथ अनुचित बर्ताव किया हो तो आप अवश्य क्षमा करें। पूज्य गुरुदेव ने मुझे यहाँ आपकी सेवा वैयावृत्ति के लिए भेजा था परन्तु मैं आपकी सेवा वैयावृत्ति न कर सका। इसके लिए भी आपसे व पूज्य गुरुदेव के चरणों में क्षमा याचना।

मैंने कहा – आपने तो हमेशा वैयावृत्ति की है अभी चातुर्मास में जब मैं अस्वस्थ हो गया था, तब भी आपने ही तो सम्हाला था ऐसा कोई विकल्प नहीं रखना (मेरा गला भर आया था, आँखें नम होने को तैयार थीं मैंने गुरुदेव को स्मरण कर साहस में वृद्धि की और सब स्पष्ट करना ही सर्वोचित व प्रासंगिक समझा) महाराज आपको पागल कुत्ते के काटने का ही असर है यही डाक्टर ने कहा है, फिर भी घबराने की कोई बात नहीं है। मैं आगमोक्त विधि से आपकी समाधि कराने के लिए हर क्षण तत्पर रहूँगा। आप भी हमेशा की तरह साहस स्थिर रखकर मेरा पूर्ण सहयोग कराना।

महाराज – (अत्यंत भावुक हो जाते हैं) और कहते हैं कि परम पूज्य आचार्य श्री जी, समस्त मुनिराज, समस्त आर्यिकाएँ एवं ब्रह्मचारी भाई बहिनों से भी मेरी ओर से क्षमा भाव कह देना। आपसे

निवेदन है कि मेरे किसी व्रत में दोष न लगे ऐसा निर्दोष समाधिमरण करना।

मैंने कहा - तो फिर कल का उपवास कर सकते हो।

महाराज - (अत्यन्त हर्षित मन से) आप कहो तो आजन्म चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दूँ।

यह था मुनि प्रवचनसागरजी का महान् साहस का परिचय कराने वाला क्षण। ऐसे साहसी साधक को महान् तपस्वी मुनिराज भी बारम्बार नमोऽस्तु करने प्रतीक्षारत् रहते हैं। आपने तत्त्वार्थसूत्र कथित मारणांतिकीं सल्लेखना जोषिता (अर्थात् - मरण समय में प्रसन्नता पूर्वक सल्लेखना ग्रहण करना) को चरितार्थ किया।

मैंने कहा - अभी हमने कल के उपवास का ही सोचा है इतना कर लो। आगे धीरे-धीरे एक-एक ही उपवास बढ़ाना उचित होगा।

महाराज - कल के उपवास का संकल्प कर लूँ। आज तिथि क्या है ?

मैंने कहा - चौथ (मगसिर शुक्ल चतुर्थी)

महाराज - आज रिक्ता तिथि है। कल सुबह उपवास का संकल्प कर लें, तो।

(महाराज मात्र साधक न थे अपितु ज्योतिष पंचांग के भी आवश्यकतानुसार ज्ञाता भी थे)।

मैंने कहा - मैंने कहा ठीक है संकल्प कल सुबह कर लेना।

किन्तु सही कहा है, कल आता नहीं है। आचार्य श्री भी

कहते हैं जिसके बीच में रात उसकी क्या बात। हुआ यही रात में सागर से कोई वैद्यजी दवा और मुनि श्री अजितसागर, ऐलक निर्भयसागर जी का पत्र लेकर आ गये। पत्र में लिखा था, औषधि अचूक है। एक खुराक में ही महाराज को आराम लग जावेगा। जब मैंने महाराज को एक उपवास कराने के लिए मन बनाया था तब तत्काल बाद ब्रह्मचारी अजय के माध्यम से आचार्य श्री जी का भी संकेत था कि चौबीस-चौबीस घण्टे का ही प्रत्याख्यान कराना सर्वोचित होगा। पर डाक्टर अमरनाथजी ने ब्रह्मचारी अजय से पुनः पूछा कि सागर से ऐसी औषधि आयी है। तब ब्रह्मचारी अजय ने आचार्य श्री जी से चर्चा की तो आचार्य श्री जी भी औषधि का प्रयोग करने के लिए तैयार हो गये और सबका विचार बदल गया। आचार्यश्री जी ने कहा कि उपवास न कराकर औषधि का प्रयोग अवश्य करके देखें। अतः महाराज को 28 नवम्बर का उपवास न करा सका। महाराज को शीघ्र औषधि का लाभ प्राप्त हो जावे। इसलिए सुबह जल्दी लगभग 7:30 बजे सागर से आयी औषधि चला दी गयी परन्तु कोई सकारात्मक परिणाम सामने नहीं आ सका। जैसे नदी में तीव्र गति की बाढ़ आ रही हो तब बड़े-बड़े तैराक असफल हो जाते हैं, वैसे ही महाराज के असातावेदनीय के साथ आयु कर्म भी तीव्र गति से उदीरणा को प्राप्त था। कर्मों की उदीरणा के समय नौ कर्म प्रायः कार्य करने में समर्थ नहीं होते हैं। रोग के अनुसार रोगी की प्रतिक्रिया भोंकने, चिल्लाने यहाँ तक कि काटने के रूप में देखी जाती है परन्तु यह तो महाराज की संयम लब्धि स्थानों का ही अतिशय रहा है कि रेबीज होने पर भी महाराज शांत और साम्य भाव से युक्त थे। महाराज के दायें हाथ की ओर देखें तो

देखने को मिल रहा था कि अनामिका के ऊपर अंगुष्ठ णमोकार मंत्र की जाप में व्यस्त हैं। मुनि श्री प्रवचनसागरजी की हर सच्चे साधक की भाँति णमोकार मंत्र में अपार श्रद्धा थी, एक सच्चा विश्वास था।

तभी तो 38, 32,164 णमोकार मंत्र जाप अर्थात् 35,483 मालाएँ चार पाँच वर्षों के अल्प समय में पूरी कर ली थी। प्रायश्चित आदि की जाप मालाएँ अलग करते थे। शरीर तीव्र गति से कमजोर हो ही रहा था। आज दोपहर बाद आवाज भी अपनी स्थिति खो चुकी थी और लड़खड़ाने लगी थी। अब क्षपक की स्थिति निर्यापक को अधिक सावधान रहने का संकेत दे रही थी। क्षपक महाराज तो सावधान थे ही।

मुनि श्री प्रवचनसागरजी महाराज की आकस्मिक सल्लेखना का समाचार देश ही नहीं विदेशों तक फैल चुका था। जैसे हवा के माध्यम से किसी गंध का प्रसार हो जाता है वैसे भी मुनि श्री जी ऐसे व्यक्तित्व के धनी थे कि जो एक बार उनके दर्शन कर लेता था निकट से उनकी साधना देख लेता था तो उनको कभी भूल नहीं पाता था। सभी लोग समाचार सुनते ही कटनी आने के लिए तैयार हो गये।

अनेक नगरों से विशाल जन समूह अल्पकाल में ही कटनी में एकत्रित हो गया। सामान्य श्रावक श्राविका तो आये ही मुनि श्री समतासागरजी, मुनि श्री प्रमाणसागरजी, ऐलक निश्चयसागरजी भी 28 नवम्बर के लगभग 11 बजे कटनी आ गये। महाराजश्री का कथन रहा कि रात बीच में आ गयी थी अन्यथा हम और भी शीघ्र क्षपकराज की सेवा में आ जाते। जबकि बहोरीबंद से कटनी 50 किलोमीटर है और महाराज त्रय समाचार मिलने के 24 घंटे के भीतर

ही कटनी आ गये। यह भी कम पुरुषार्थ नहीं है। धन्य हैं ऐसे क्षपक की सेवा की चाह रखने वाले और धन्य हैं क्षपकराज जो मरण से भय नहीं अपितु मरण का स्वागत कर रहे हैं। महाराज त्रय के आने पर मुझे बहुत राहत अनुभव हुई। एक से चार महाराज हो गये। क्योंकि भगवती आराधना आदि समाधि के शास्त्रों में कम से कम समाधि कराने वाले दो होना चाहिए। अधिकतम अड़तालीस मुनिराज समाधि कार्य में कार्य करते हैं। मुनि श्री प्रबुद्धसागरजी भी कटनी आने का निरंतर पुरुषार्थ कर रहे थे। आर्यिका गुणमति जी ससंघ कटनी की ओर विहार कर चुकीं थीं। परन्तु सभी को कटनी के रास्ते की दूरी पर्याप्त बाधक हो रही थी और भी बहुत सारे मुनि आर्यिका संघ क्रमशः सेवा दर्शन के लिए कटनी आने का मन बना चुके थे। पर सबको रास्ते की दूरियाँ बाधक बनी हुई थी। मन से सभी कटनी आ चुके थे। मुनि श्री प्रवचनसागरजी मन से तो परम पूज्य आचार्य श्री के चरणों में पहुँच गये थे तथा वात्सल्यमयी विशाल मुनि संघ के बीच चारों प्रकार की आराधना (दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपाराधना) में संलग्न थे क्योंकि वह हमेशा भावना भी यही करते थे –

गुरुमूले यतिनिचिते चैत्यसिद्धान्तवार्धिसद्घोषे।
मम भवतु जन्म जन्मनि सन्यसनसमन्वितं मरणम् ॥

उक्त पंक्तियाँ समाधि भक्ति में आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने कही हैं, उन्हीं के कथनानुसार भावना करते थे कि मेरा जन्म जन्म तक जब तक मोक्ष न हो गुरु के चरण सान्निध्य में, मुनियों के समूह में, विशाल चैत्य चैत्यालयों के मध्य में और सिद्धान्त वाक्यों के उच्चारण के साथ मरण होता रहे।

दूरस्थ मुनि आर्यिका संघ चाहते हुए भी कटनी न आ सके। परन्तु धर्म स्नेही ब्रह्मचारी भाई बहिन जो विभिन्न संघों आश्रमों में साधनारत हैं कटनी आ चुके थे। आए इसलिए कि मुनि प्रवचनसागरजी के एक बार अंतिम दर्शन कर लें और अपनी चर्म चक्षुओं को पवित्र कर लें। मुनि श्री प्रवचनसागरजी के दर्शन कर दर्शनार्थियों को अपार शांति (संतुष्टि) हो रही थी। वहीं दर्शनार्थीयों के अन्तस् में बेहद दुख था, जो उनकी आँखों के माध्यम से दिखाई दे रहा था। सभी की आँखें निरंतर आँसुओं की वर्षा में संलग्न थी मात्र इसलिए नहीं कि मुनि श्री प्रवचनसागरजी समाधि मरण की ओर हैं बल्कि इसलिए कि एक पहुँचा हुआ साधक असमय में ही अपनी साधना को विराम देने जा रहा है। काश अधिक नहीं तो बीस पच्चीस वर्ष भी और हमारे बीच रहकर धर्म कार्य कर लेता तो शायद इतना दुख नहीं होता। महाराज की अभी उम्र ही क्या थी ? शरीर की अपेक्षा तैंतालीस वर्ष और संयम की अपेक्षा सात आठ वर्ष। सभी को भले दुख था किन्तु गर्व भी था क्योंकि साधक सिंह की तरह यात्रा को विराम देने जा रहा है किसी कायर की भाँति नहीं। किसी को, महाराज जब आश्रम गुरुकुल में थे, उस समय के वात्सल्य भाव याद आ रहे थे, किसी को दीक्षा समय की बातें ध्यान आ रहीं थी, किसी को मुनि जीवन की साधना स्मरण हो आयी थीं। कोई-कोई आपस में बोल रहे थे कि प्रवचनसागरजी चातुर्मास में दो आहार और एक उपवास की कठिन साधना करते थे, कोई कहता महाराज खूब माला फेरते थे अधिक क्या समग्र वातावरण प्रवचनसागर मय हो गया था।

महाराज को लाभान्तराय कर्म का भी तीव्र उदय था इसीलिए

आहार में खूब अन्तराय आते थे परन्तु विलक्षण साहस था कि अंतराय की प्रतिकूलता के उपरान्त भी खूब उपवास करते थे और पिछले पाँच वर्षों में चारित्र शुद्धि व्रत के तीन सौ पचास उपवासों का अपूर्व कीर्तिमान स्थापित किया था। जबकि चातुर्मास स्थापना निष्ठापन प्रायश्चित और केशलोंच आदि के उपवास अलग करते थे। मूलाचार ग्रन्थों में मुनि को दो माह में उत्कृष्ट, तीन माह में मध्यम, चार माह में जघन्य रूप से केशलोंच करने को कहा है। परन्तु चार माह की सीमा का उल्लंघन कर कोई भी मुनि केशलोंच न करें, भले ही प्राण क्यों न निकल जावें, किन्तु मुनि श्री प्रवचन सागरजी चार माह में तीन में नहीं, ढाई माह में केशलोंच करते थे। आपने ब्रह्मचारी अवस्था से लेकर समाधिमरण तक लगभग पचास-पचपन केशलोंच सानंद सम्पन्न किए हैं। महाराज तीर्थयात्रा के कार्य में भी पर्याप्त रुचि रखते थे, तभी तो आपने ब्रह्मचारी अवस्था में तीर्थराज सम्मेदशिखरजी की चालीस-बयालीस वंदनाओं के साथ प्रायः सभी अतिशय सिद्धक्षेत्रों की वंदना की है और वंदना कर अपने दुर्लभ मानव जीवन को धन्य किया है। इस प्रकार महाराज अनेकानेक उपलब्धियों को हासिल करने वाले व्यक्ति थे। महाराज की उपलब्धियाँ आज कल ही नहीं, चिरकाल तक आदर्श रहेंगी।

मुनि श्री प्रवचनसागरजी महाराज धर्मशाला के छत पर तत्त्व चिन्तनरत थे और मुनि समतासागरजी महाराज, मुनि श्री प्रमाणसागरजी महाराज एवं ऐलक श्री निश्चयसागरजी महाराज सीधे आकर क्षपक के दर्शनार्थ पहुँचे। महाराज द्वय से क्षपक महाराज ने नमोऽस्तु किया और ऐलकजी को आशीर्वाद दिया। महाराज त्रय की महाराज के

साथ वार्ता प्रारम्भ हो गयी और तीनों महाराजों ने महाराज की समाधि साधना की खूब अनुमोदना की तदुपरान्त महाराजों ने सम्बोधन रूप में धर्म चर्चा को प्रारम्भ कर अपने कर्त्तव्य का प्रारम्भ किया। कुछ समय बैठकर श्री समतासागरजी आदि महाराज त्रय आहारचर्या के लिए वहाँ से चले गये और मैं महाराज के निकट बैठ गया। मैंने क्षपक महाराज के उपयोग को आगम के प्रांगण में बनाये रखने के लिए कुछ विचार किया क्योंकि रोग का प्रभाव मन: स्थिति पर भी पड़ता जा रहा था। इसलिए मैंने ब्रह्मचारी के माध्यम से क्षपक महाराज से पृच्छना प्रारम्भ कर दी।

मुनि समतासागरजी, मुनि प्रमाणसागरजी क्षपक से नमोस्तु करते हुए

क्षपक मुनि प्रवचनसागरजी से वार्ता करते मुनित्रय

ब्रह्मचारी – महाराजजी (मुनि श्री प्रवचनसागरजी) तत्त्वार्थसूत्र के सातवें अध्याय में कहा गया है–

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय विषय रागद्वेष वर्जनानि पंच॥ ४॥

इसका क्या अर्थ होता है, कृपया हमें समझाइए ?

महाराज – स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण यह पाँच इन्द्रिया होती हैं। इन पाँचों इन्द्रियों के विषय मन के अनुकूल भी होते हैं और मन के प्रतिकूल (अमनोज्ञ) भी होते हैं। मन के अनुकूल विषयों में राग नहीं करना और मन के प्रतिकूल विषयों में द्वेष नहीं करना चाहिए। इससे अपरिग्रह महाव्रत पूर्ण सुरक्षित रहता है। मुझे इस समय यही सूत्र क्यों याद आया इस सम्बन्ध में मैं कहना चाहूँगा, उपरोक्त सूत्र महाराज के चुने हुए सूत्रों में से एक था, क्योंकि एक बार

एक साधक महाराज से कोई नियम प्रदान करने के लिए बारम्बार निवेदन कर रहा था। विशेष आग्रह के उपरान्त महाराज ने संदर्भित साधक को उपरोक्त सूत्र की प्रतिदिन एक माला फेरने का नियम प्रदान किया। साधक ने सहर्ष नियम धारण कर अपने को सौभाग्यशाली माना और साधनारत हो गया। मैंने पुनः ब्रह्मचारी के माध्यम से पृच्छना की। ब्रह्मचारी – महाराज जी! समयसार की कितनी सुंदर गाथा है (मैंने रानू भाई से कहा गाथा का दूसरा चरण अशुद्ध बोलना)

चर्चारत मुनि प्रवचनसागरजी

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसण णाण मइयो सदारूवी ।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तांपि ॥

मैंने महाराज से पूछा गाथा के दूसरे चरण में पूर्ण शुद्धि नहीं है, ऐसा लगता है ?

महाराज – दोनों पाठ मिलते हैं रूवी अथवा रूवो ।

उपरोक्त पृच्छनाओं से मुझे महाराज के पूर्ण सजग होने का परिचय मिल गया। मैंने परोक्ष में ब्रह्मचारी के माध्यम से पृच्छना

इसलिए की थी कि महाराज को ऐसा अनुभव न हो जावे कि महाराज अर्थात् मैं परीक्षा ले रहा हूँ, किन्तु परीक्षा लेना भी निर्यापक के कर्त्तव्यों में से एक कर्त्तव्य होता है और महाराज परीक्षा में पूर्ण उत्तीर्ण रहे। महाराज का शरीर और वचन भले ही इस समय क्षीण हो गये थे परन्तु मन पूर्ण स्वस्थ लग रहा था। महाराज त्रय आहारचर्या से लौट आए थे और महाराज त्रय क्षपक महाराज को अनेक प्रकार से सम्बोधन देने में संलग्न हो गये, महाराज भी महाराज त्रय से थोड़ी-थोड़ी चर्चा कर रहे थे।

ब्रह्मचारी प्रदीप (सागर वाले) और स्थानीय श्रावक गण अकलतरा से लौट आए थे, साथ में परम पूज्य आचार्यश्री का मंगल संदेश लेकर आये। मुनि श्री प्रवचनसागरजी को हमने परम पूज्य आचार्य महाराज का मंगल संदेश बार-बार सुनाकर भी सावधानी हेतु सम्बोधन किया।

परम पूज्य आचार्य महाराज का संदेश –

1. मुनि श्री प्रवचनसागरजी को आशीर्वाद।
2. आत्म तत्त्व को ही मुख्यता देना।
3. शरीर की नश्वरता का ध्यान रखना।
4. शरीर की अशुचिता का चिंतन करते रहना।
5. अभी तक जो स्वाध्याय किया है उसका प्रयोग करना है।
6. शरीर व्याधि मंदिरम् इसको नहीं भूलना।

7. मन की दृढ़ता बनाये रखना।

8. हमारा बहुत-बहुत आशीर्वाद, मेरी तरफ से और संघ तरफ से कोई विकल्प नहीं रखना। निर्णयसागरजी को भी आशीर्वाद वह भी साहस न खोएँ, अन्य सेवारत जनों को भी आशीर्वाद।

समाधि के समय विश्राम करते हुए मुनि प्रवचनसागरजी

परम पूज्य आचार्य श्री ने सम्बोधनार्थ समयसार की निर्जरा अधिकार की एक गाथा भी भेजी थी वह है-

छिज्जदु वा भिज्जदु वा, णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं।
जह्मा तह्मा गच्छदु, तहा वि हु ण परिग्गहो मज्झं॥ 17॥

अर्थात् - पर द्रव्य छिद जावे अथवा भिद जावे अथवा कोई ले जावे अथवा प्रलय से नष्ट हो जावे, जिस तिस कारण को प्राप्त हो

समाधि के बाद मुनि श्री का पार्थिव शरीर

जावे, तब भी परिग्रह मेरा नहीं है। फिर शरीर तो मेरा है ही नहीं, अर्थात् मैं तो अपरिग्रह स्वभावी हूँ।

मुनि श्री प्रवचनसागरजी ने पूर्व की भाँति निर्जरा के साथ अंतिम रात्रि का भी सदुपयोग कर लिया और 29 नवम्बर का सूर्य उदित हुआ। मानों सूर्य देवता महाराज के लिए वैक्रियिक शरीर लेकर ही पृथ्वी तल पर आया है और सूर्य कह रहा है स्वर्ग चलना है। ग्यारह बजकर बीस मिनिट पर महाराज ने पार्थिव शरीर को छोड़कर अमर शरीर को धारण कर लिया अर्थात् पुराने नश्वर मानव शरीर को छोड़कर स्वर्गवासी हो गये और मेरे जीवन का सच्चा मित्र, सच्चा साथी, सच्चा सलाहकार हमेशा के लिए मुझसे दूर हो गया।

मुनि श्री प्रवचनसागरजी के जाने से मेरी व्यक्तिगत क्षति तो हुई ही है जिसकी क्षति पूर्ति शायद अब संभव नहीं होगी। परन्तु मुनि प्रवचनसागरजी अकेले एक मेरे मित्र न थे वह तो चलते-फिरते

मूलाचार थे, श्रावकाचार के एक कुशल उपदेशक होने से श्रावकाचार थे। अतः उनका न होना, एक मूलाचार की चेतन कृति का न होना है, एक श्रावकाचार का न होना है। मुनि श्री प्रवचनसागरजी का अभाव एक महान् गुरु के शिष्य का अभाव मात्र नहीं अपितु समग्र अहिंसक समाज के महान् आराध्य का अभाव है।

आज वह प्रसंग याद आ रहा है जब गुरु नाम गुरु आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज की नसीराबाद (राजस्थान) में समाधि चल रही थी। उस समय परम पूज्य ज्ञानसागरजी महाराज की सेवा (वैयावृत्ति) के लिए मुनि पार्श्वसागरजी महाराज नसीराबाद पधारे। परम पूज्य ज्ञानसागरजी की समाधि के 15 दिन पूर्व जब पार्श्वसागरजी आहार करके पधारे। तब उनको उदरशूल आरम्भ हो गया और बेचेनी बढ़ने लगी। शाम तक पेट फूलकर गुब्बारे की तरह हो गया। तुरन्त डाक्टर को बुलाकर दिखाया गया तो उसने कहा यदि शीघ्र आपरेशन नहीं कराया तो बचाना असंभव है। इस समय महाराज को मौन शांत देखकर डाक्टर साहब ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा इनकी जगह कोई दूसरा सामान्य व्यक्ति होता तो कष्ट सहन नहीं कर पाता। ये मुनिराज इतनी भयंकर पीड़ा का साम्य भाव से सहन कर रहे हैं। आप से निवेदन किया कि आप अपवाद मार्ग ग्रहण कर लें। स्वस्थ होने पर पुनः दीक्षा ग्रहण कर लेना। पार्श्वसागर जी का उत्तर था इस तुच्छ देह के लिए मैं धर्म नहीं त्याग सकता। इस नश्वर देह से जो करणीय था कर लिया। सभी ने महाराज की दृढ़ता की खूब प्रशंसा की। पूरी रात वेदना सहने के बाद सुबह आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज से कहा मेरा मरण निकट है णमोकारमंत्र सुनाओ और मंत्र का ध्यान करते

नश्वर देह का त्याग कर दिया। हो सकता है मुनिराज के पास बहुत अधिक शास्त्रीय ज्ञान पाण्डित्य न हो, भले वह प्रसिद्ध न रहे हो, लेकिन जिस तरह उन्होंने धर्म को आत्मसात किया था उसके समक्ष यह सारी योग्यताएँ प्रतीत होती हैं। ठीक इसी तरह मुनि प्रवचनसागरजी वैयावृत्ति के लिए मेरे साथ आए, किन्तु समाधिस्थ हो गए।

परमार्थ दृष्टि से देखें तो जन्म और मरण दोनों ही व्यवहार हैं। द्रव्य न जन्मता है और न ही मरता है इसलिए जीव द्रव्य का भी निश्चयनय से न जन्म है और न ही मरण, परन्तु व्यवहारनय की अपेक्षा जीव के द्वारा नवीन शरीर धारण करने का नाम जन्म और पुराने शरीर को छोड़ने का नाम मरण है। संसार में सभी प्राणी जन्म लेते हैं पर सर्वोत्तम प्राणी वह ही माने जाते हैं जो जन्म लेकर पुनः जन्म नहीं लेते हैं। मोक्ष पुरुषार्थ करके केवलज्ञान प्राप्त करते हैं और उसी जन्म में निर्वाणधाम प्राप्त कर लेते हैं, उनका जन्म ही सर्वोत्तम माना जाता है। द्वितीय अर्थात् उत्तम प्राणी वह माने जाते हैं, जो जन्म लेकर मोक्ष पुरुषार्थ तो करते हैं पर निर्वाणधाम से वंचित रहते हैं। उनको भले ही उस जन्म में निर्वाण की प्राप्ति न हो, किन्तु वे समाधिमरण के माध्यम से आगे दो तीन भवों में निर्वाण प्राप्ति का मार्ग तो प्रशस्त कर ही लेते हैं। मध्यम प्राणी वह माने जाते हैं जो मोक्ष पुरुषार्थ करना चाहते हैं किन्तु चारित्रमोहनीय कर्म के तीव्र उदय के कारण मोक्ष पुरुषार्थ रूप चारित्र ही अंगीकार नहीं कर पाते हों, परन्तु उनका चारित्र और चारित्रवानों के प्रति पूर्ण श्रद्धान रहता है, वह अविरत सम्यग्दृष्टि प्राणी भी संख्यात असंख्यात भवों में अवश्य मुक्त हो जाते हैं, परन्तु जघन्य प्राणी वह माने जाते हैं जो न निर्वाण प्राप्त करते हैं, न

निर्वाण प्राप्त करने का पुरुषार्थ करते हैं, न ही निर्वाण के पुरुषार्थियों में और पुरुषार्थ में श्रद्धान रखते हैं, वह तो अनादिकाल से जन्म-मरण करते आ रहे हैं, आगे भी अनन्तकाल तक जन्म-मरण करते रहेंगे। हमारे शास्त्रों में जन्म महोत्सव को महत्त्व नहीं दिया गया है, परन्तु मृत्यु महोत्सव ग्रहण करने की प्रेरणा भी दी गयी है। जन्म को याद करना इसलिए भी ठीक नहीं है क्योंकि जन्म लेने से पूर्व हम कहीं न कहीं से अवश्य मरण करके आए हैं और आगे भी मरण करेंगे जन्म के स्मरण से अतीत और अनागत के मरणों को स्मरण करना है। मुनि प्रवचनसागरजी सर्वोत्तम जन्म धारक भले ही न हों पर उत्तम जन्म धारक अवश्य सिद्ध हुए हैं। संभवतः जो दो तीन भवों में निर्वाणधाम प्राप्त कर लेवेंगे। इसलिए मगसिर शुक्ला छठ वि.सं. 2060 (29 नवम्बर, 2003) शनिवार का दिन शोक का नहीं आनंद का, मातम का नहीं महोत्सव का, संसार का नहीं निर्वाण का प्रसंग था।

मुनि श्री प्रवचनसागरजी के साधक शरीर को (साधक इसलिए कि यही शरीर महाराज की साधना में योगदान देता था) विशाल जन समुदाय के साथ अग्नि संस्कार स्थल तक ले जाया गया।

अंतिम विदाई यात्रा कटनी नगर के प्रमुख मार्गों से ले जायी गयी। एक दिन वह था 24 नवम्बर, 2003 का जब हम दोनों मुनि मित्र अमरकंटक से कटनी आये थे तब इन्हीं कटनी नगर के रास्तों से धर्मशाला तक आए और एक दिन आज का है कि इन्हीं रास्तों से लोग महाराज को अंतिम विदाई दे रहे हैं। महाराज की आत्मा भले ही स्वयमेव स्थानान्तरित हो गयी हो, पर शरीर तो वही है। शरीर का

अंतिम विदाई के समय

स्वभाव चिंतनीय है, जिस शरीर से साधक पाँच दिन पूर्व स्वयं चलकर अमरकंटक से कटनी आया हो, वह शरीर शीघ्र रुग्ण होकर आज स्वयं छूट गया। वैराग्य उत्पत्ति का इससे बड़ा और कौन-सा अध्याय होगा ? अर्थात् कोई नहीं। अंतिम यात्रा में जहाँ एक तरफ वैराग्य ध्वनि से वैराग्यमय वातावरण बना हुआ था, तो दूसरी तरफ भक्तों के द्वारा प्रवचनसागर अमर रहें, प्रवचनसागर महाराज की जय, के नारों से आकाश गुंजायमान था। शायद कटनी नगर में इतनी धार्मिक भीड़ प्रथम बार एकत्रित हुई होगी। सभी जैन जैनेतर बंधुओं ने विदाई यात्रा में बढ़ चढ़ कर भाग लिया और अपने आराध्य के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की। वैराग्यमय वातावरण में कोई अत्यन्त गंभीर था तो कोई धर्मात्मा के वियोग आँसू नहीं रोक पा रहा था। मुझे मुनि श्री समतासागरजी, मुनि श्री प्रमाणसागरजी, ऐलक श्री निश्चयसागरजी महाराज और कुछ ब्रह्मचारी भाई अपने साथ लेकर सीधे अग्नि

संस्कार स्थल पहुँचे। मुनि श्री प्रबुद्धसागरजी का अग्नि संस्कार के पूर्व आना हो गया था। दयोदय पशु सेवा केन्द्र कटनी के प्रांगण में हम (मुनि समूह) ने सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, योगीभक्ति, पंचमहागुरुभक्ति, शांतिभक्ति सहित समाधिभक्ति का पाठ किया और स्वर्गस्थ आत्मा के शरीर को अंतिम विदाई दी।

त्यागी व्रतियों सहित सारा प्रांगण वैराग्यमय था। मेरी आँखें अभी भी आँसू रोकने को तैयार न थीं पर अन्तस् में अपार संतोष था। आँखें नम इसलिए थीं कि अब महाराज के जैसा साधक मोक्षमार्ग में ऐसा सहयोगी मिलना कठिन है, संतोष इसलिए था कि जो समयोचित कर्त्तव्य था महाराज कर गये। जो मेरा समयोचित कर्त्तव्य था। मैंने करने का प्रयास किया। बाकी सब दैवाधीन है। महाराज कहा करते थे जब होते कर्मों के फेर, मकड़जाल में फँसते शेर अर्थात् जब तीव्र कर्म का उदय आता है तो बड़े-बड़े शक्तिशाली प्राणी भी छोटे से

अंतिम संस्कार की तैयारी

निमित्त मिलने पर घोर कष्ट में आ जाते हैं और पुरुषार्थ कार्यकारी नहीं होता है। परन्तु साधक कष्ट में शोक नहीं हर्ष मानता है कि कष्ट के निमित्त से कर्म निर्जरा होगी और वह परीक्षा की कसौटी पर खरा भी सिद्ध होता है। ऐसा ही व्यक्तित्व रहा है मुनि श्री प्रवचनसागर जी का। आचार्य समन्तभद्र महाराज ने भी यही कहा है, धर्म के लिए शरीर छोड़ना चाहिए, शरीर के लिए धर्म का कभी त्याग नहीं करना चाहिए -

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निः प्रतीकारे।
धर्माय तनु विमोचन माहु सल्लेखना मार्या॥ र. श्रा.॥

अर्थात् - साधक को उपसर्ग में, दुर्भिक्ष में, वृद्धावस्था आने पर जब शरीर धर्म योग्य न रहे, असाध्य रोग हो गया हो तब धर्म के लिए शरीर का त्याग कर देना चाहिए, इस प्रकार त्याग करने को

मुनि प्रवचनसागरजी को अंतिम विदाई देकर लौटते हुए मुनिगण

आर्य पुरुषों ने सल्लेखना कहा है। मुनि श्री प्रवचनसागरजी महाराज ने धर्म के लिए शरीर का ही त्याग कर दिया परन्तु कायरों की भाँति शरीर के लिए धर्म नहीं छोड़ा। यह कानों सुनी घटना नहीं अपितु पंचमकाल का मेरा आँखों देखा अतिशय है। यह मुझे ही नहीं समग्र श्रमण संस्कृति को गर्व की बात है, समग्र जैन समाज को गर्व की बात है। सल्लेखना का उल्लेख अन्य दर्शनों में भी बताया गया है। विनोबाभावे ने भी जीवन के अंत में लगभग सल्लेखना जैसा आचरण किया था। अतः सल्लेखना समग्र अहिंसक समाज को गौरव का विषय है।

सल्लेखना आचार्य श्री कुन्दकुन्द, आचार्य श्री समन्तभद्रस्वामी की दिव्यदेशना का सार है, जो मुनि प्रवचनसागरजी को प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हीनसंहनन और पंचमकाल में भी हीन हुण्डावसर्पिणी काल परन्तु प्रवचनसागरजी ने निर्दोष अट्ठाईस मूलगुण रूप मुनिधर्म का जीवन के अन्त तक सानन्द पालन किया और उन व्यक्तियों को करके दिखा दिया है, जो कहते हैं कि वर्तमान समय व्रत महाव्रत ग्रहण करने योग्य नहीं हैं। आपने व्रतों का पालन ही नहीं किया उपसर्ग परिषहों के साथ सल्लेखना जैसे महान् अनुष्ठान को भी सफलता पूर्वक सम्पन्न कर लिया और स्वयं श्रमण संस्कृति के आदर्श पुरुष हो गये। मेरी पंचपरमेष्ठी भगवान् के चरणों में प्रार्थना है कि जिनकी व्रतों के प्रति अनास्था है उनकी व्रतों में आस्था उत्पन्न हो जावें, जो प्रमादी जन हैं, वह प्रमाद का त्याग करें और व्रती नहीं महाव्रती बनें और मुनि प्रवचनसागरजी की भाँति विपुल संवर-निर्जरा के पात्र बनें। जीवन के अंत समय में समाधिमरण करके अपने दुर्लभ

मानव जीवन और वीतराग धर्म के सान्निध्य को सार्थक करें।

मुनि प्रवचनसागरजी शरीर से तो अब हमारे बीच हमेशा के लिए विदा ले चुके हैं परन्तु उनके संयम का आदर्श चिरकाल तक हमारे बीच अमर रहेगा। मैंने जो भी कुछ अब तक मुनि श्री प्रवचनसागरजी के सम्बन्ध में कहा है वह सब उन्हीं के द्वारा किये गये पुरुषार्थ की उपलब्धि है इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। हाँ, यदि मेरे द्वारा कुछ छूट गया हो, व्यक्त करने में कोई भूल हो गयी हो तो सज्जन लोग उसे सुधार कर ही ग्रहण करने का कष्ट करें। मैंने तो उपरोक्त माध्यम से अपने मित्र के प्रति एक कर्त्तव्य मात्र किया है, कृतज्ञताज्ञापन का कार्य करने का प्रयास मात्र किया है। यदि कहीं कोई त्रुटि शेष रह गई हो तो सुधी जन सुधार कर ही ग्रहण करेंगे, इसी विश्वास के साथ और मुनि प्रवचनसागर नाम चिरकाल तक दिगदिगन्त तक जीवंत रहे, अमर रहे, आदर्श रहे और अधिक क्या ? हम सबके जीवन में हर दम साथ रहे।

जाते जाते वो हमें अच्छी निशानी दे गये।
उम्र भर दोहरायेंगे ऐसी कहानी कह गये॥

इन्हीं मंगल भावनाओं सहित॥

॥ परमोपकारी आचार्य श्री विद्यासागर महाराज की जय॥

॥ अहिंसा परमो धर्म की जय॥

मित्र की डायरी

- संसारी प्राणी शुद्ध बनना चाहता है पर तपना नहीं चाहता, तप के बिना शुद्धता संभव नहीं है।
- ज्ञान की सबसे अच्छी पहचान उसका प्रयोग दूसरों को समझाने के लिए नहीं है।
- छोटे-छोटे पदार्थों से प्रभावित होने वाला व्यक्ति अपना वैराग्य सुरक्षित नहीं रख सकता।
- छह आवश्यकताओं द्वारा ध्यान रूपी अग्नि प्रज्जवलित करते रहना चाहिए।
- आशावान होने पर कार्य के योग्य अनुकूल सामग्री मिल जाती है और कार्य सम्पन्न हो जाता है।
- ध्यान के विषय में लिखने के लिए भी ध्यान की आवश्यकता होती है।
- पंचन्द्रियों के विषय में रच-पच जाना मोह का चिह्न है। दया का न होना भी मोह का चिह्न है।
- आकाश के फूल हो सकता है, गधे के सींग हो सकते हैं पर किसी भी देश में काल में गृहस्थाश्रम में ध्यान की सिद्धि नहीं हो सकती।
- जिसे अनेकान्त का समाचीन ज्ञान है वही ध्यान की सिद्धि कर सकता है।

- परमार्थता वहीं टिक सकती है जहाँ लौकिकता नहीं है।
- जिस प्रकार दुख से डरते हैं उसी प्रकार संसार से प्राप्त होने वाले सुखों से भी डरना चाहिए।
- एक मोही किसी को निर्मोही नहीं बना सकता ।
- मोक्षमार्ग में कर्म का तूफान कब आ जाये पता नहीं।
- रत्नत्रय के बिना ध्यान संभव नहीं है जैसे आकाश कुसम से बन्ध्यासुत का सेहरा बनाना असम्भव है।
- अरहंत भगवान भी असिद्धत्व भाव का अनुभव करते हैं क्योंकि असिद्धत्व औदयिक भाव है।
- निर्विकल्प समाधि के समय साधु जब आत्मा का अनुभव करते हैं उस समय औदयिक भाव का अनुभव नहीं करते।
- किसान खेत को जलाता है बीज को नहीं, खेत जलाने से उसकी उत्पादन शक्ति और बढ़ जाती है इसी प्रकार औदयिक शरीर को अच्छी तरह जलायेंगे तो आगे और अच्छे औदारिक वैक्रियिक आदि शरीर मिलेंगे।
- ध्यान से ही संसार होता है और ध्यान से ही मुक्ति होती है।
- अध्यात्म योग में याददाश्त बढ़ाई नहीं, घटाई जाती है।
- दुनिया से जब तक लगाव रहेगा तब तक ध्यान की सिद्धि नहीं होगी।
- शरीर के बनने की प्रक्रिया एक बार टूट गयी तो दुबारा जुड़ नहीं सकती।
- योग एक ऐसी वस्तु है जिससे ताजगी आती है। योग में पारंगत

व्यक्तियों का अपना ध्यान ध्यान अवस्था में नहीं रहता।

- सामायिक में शरीर पृथक् अनुभव में आ जाए तो आत्मा अपने आप ही अनुभव में दिख जावेगी।
- जब शरीर के मरण होने के बाद पुनः जन्म नहीं होता तब ही आत्मा की रक्षा होती है।
- ज्ञान कोई भी प्राप्त कर सकता है परंतु विवेक सबके पास नहीं होता।
- गुरु अपना कल्याण तो करता ही है साथ ही अपने शरणागतों का भी कल्याण करता है।
- मृत्युमहोत्सव मनाने वाला कायर नहीं हो सकता वह वीर होता है, महावीर होता है। कुछ ही भवों में उसका निर्वाण हो जाता है।
- समाधि हमें जीने की कला सिखाती है।
- जैसे चक्रवर्ती चक्र की प्राप्ति के पश्चात् दिग्विजय के लिए निकलता है। इसी तरह मुनि भी समाधि चक्र को लेकर मोक्ष रूपी स्वराज्य को प्राप्त किया करते है।
- जमाने में रहकर अपने आप को जमाना भी बहुत बड़ी बात है। जो जमाने में बह जाता है वह संसार में डूब जाता है।
- भटकने वाला भटक रहा है पदार्थ न तो स्वयं भटक रहे हैं और न ही किसी को भटका रहे हैं।
- ज्ञानसागरजी ने योग्य समय पर पद का त्याग कर दिया था, जिस प्रकार गृहस्थ अपनी कन्या योग्य समय पर योग्य वर को दे देता

है।

- जो दुनिया के पदार्थों से चिपकते हुए नहीं चलता है वह निश्चित रूप से अपनी मंजिल पा जाता है।
- ज्ञानसागरजी ने अपने आपको स्वर्ण के समान रखा लौह के समान नहीं।
- उनके पास चेतना की इतनी सत्ता, सम्पदा और संस्था थी कि जड़ पदार्थों की जरुरत ही नहीं थी।
- ज्ञानसागरजी ने सभी साधुओं को दिव्य ज्ञान दिया।
- दूसरे जीव को हम जान सकते हैं उनका अनुभव संवेदन नहीं हो सकता।
- अजीव को माध्यम बनाकर जीवों में झगड़ा होता है।
- अजीव का साथ/कर्मों का साथ छोड़ देने से झगड़ा छूट जाता है।
- अनादि से जो द्रव्य है। उनमें कार्य-कारण, धर्म-धर्मी आगे पीछे की, पहले-बाद की व्यवस्था नहीं हैं तथा गुण-गुणी में गुण पहले या गुणी, ऐसा नहीं है। दोनों एक साथ हैं।
- फ्रिज में रखे हुए फल आदि का रंग तो नहीं बिगड़ता पर अंतरंग बिगड़ जाता है।
- रागद्वेष से बद्धकर्म वीतराग भाव से ही नष्ट हो सकता है।
- ज्ञान और क्रिया की मैत्री होना चाहिए तब ही कार्य की सिद्धि होती है।
- जहाँ पर जीवादि तत्त्वों का वर्णन संक्षेप में मिलता है वह अध्यात्म

है और जहाँ विस्तार से वर्णन है वे श्री धवल आदि परमागम हैं।

- श्रुत ज्ञान मन का एक विषय है पर मन से उत्पन्न नहीं होता।
- तीसरा नेत्र अर्थात् ज्ञान का नेत्र जब खुल जाता है तो कामदेव या विषय वासनाएँ सीमित होकर समाप्त प्रायः हो जाती हैं।
- ज्ञान के माध्यम से कर्म नो कर्म दूर हो जाते हैं।
- जिस प्रकार रात्रि में भोजन का निषेध है उसी प्रकार दिन में सोने का भी निषेध है।
- जिनको परिग्रह की आवश्यकता होती है वही आरम्भ सारम्भ को करता रहता है।
- जैसे-जैसे चारित्रमोहनीय का अभाव होता जाता है वैसे वैसे दया का प्रादुर्भाव हो जाता है।
- सही करुणा तो केवली के ही होती है।
- असंयम से बचने के लिए संक्लेश होता है। इसी का प्रतिफल आहारक ऋद्धि का प्रयोग होता है।
- साधु की प्रत्येक चर्या अहिंसा का उपदेश देती रहती है।
- मूल में अहिंसा है और अहिंसा में ही समता है।
- सावधानी रखने का नाम सातवाँ गुणस्थान है।
- पुण्य का उदय और पुण्य का भोग दोनों में बहुत अंतर है।
- वैयावृत्ति के लिए परिस्थिति नहीं पात्र देखा जाता है।
- अहिंसा के बिना रत्नत्रय की पूर्णता नहीं है।
- दिगम्बरत्व का अर्थ अहिंसा है।
- मुनि धर्म सबसे स्वतंत्र है एवं सरल है पर पालन करने वाला पात्र

निरीह होना चाहिए।

- वचन शुद्ध हो तो वचन सिद्ध हो जाए, ऋद्धि सिद्धि सब यूँ ही मिल जाए।
- सत्य वचन जिसके पास है वह ही अहिंसा महाव्रत की रक्षा कर सकता है।
- 25% पश्चाताप से 25% गुरु से कहने, 25% प्रायश्चित से और फिर उसके बाद सामायिक में लीन होता है तो वह शेषकृत दोष का शुद्धिकरण हो सकता है।
- व्यवहार का अच्छी तरह से ज्ञान होने पर निश्चय में पहुँचने में देर नहीं लगती है।
- आचार्यों ने अनुभय वचन बड़े अनुभव से रखा है।
- सभी जनों के हित के लिए साधुओं के वचन निकलते हैं।
- मर मिटने के लिए जो हमेशा तैयार रहते हैं उसी का नाम असंयम मार्गणा है।
- असत्य के द्वारा जगत् में विप्लव हो सकता है।
- चोरी करने वाला झूठ बोलने में बड़ा माहिर होता है।
- परधन का हरण करना माँस के ग्रास खाने के समान है।
- सम्यग्ज्ञानी को तो अपना धन भी अपना नहीं होता परधन की तो बात ही क्या ?
- कर्म का उदय होने पर भी यदि उपयोग में सावधानी है तो उदय अपना काम नहीं कर सकता इसी का नाम पुरुषार्थ है।
- इहलोक तथा परलोक में सुख चाहते हो तो चोरी के भाव को भी

मन में नहीं लाना चाहिए।

- चोरी के भावमात्र से धर्मरूपी वृक्ष जलकर नष्ट हो जाता है।
- जिसको विपरीतता सहन नहीं होती वह तप नहीं कर सकता।
- ब्रह्मचारी की शोभा व्रत है शरीर संस्कार से नहीं।
- जिसने मन को समझा दिया उसके पास काम नहीं आ सकता।
- पश्चिमी सभ्यता के कारण भारतीय सभ्यता खतरे में आ गई है।
- श्रावक के चार कर्त्तव्य है दान, पूजा, शील, उपवास।
- जिसका मन कमजोर है वह व्यक्ति व्रत का पालन नहीं कर सकता है। शरीर से नहीं मन की दृढ़ता से व्रत का पालन होता है।
- शील की मर्यादा करने वाला ही चारों पुरुषार्थ में सफल हो सकता है।
- नाम कमाने में समय लगता है बदनाम होने में समय नहीं लगता।
- जो मर्यादा रहित रहते हैं, उन्हें दानव कहते हैं।
- ज्ञान में, संयम में, अनुभव में बड़े होते हैं, उन्हें वृद्ध कहते हैं।
- वर्तमान समय को पकड़ने वाला ही जीता है।
- शरीर स्वस्थ तथा शरीर पुष्ट दोनों में अंतर है। पुष्ट शरीर प्रमाद को उत्पन्न करके उन्माद की तरफ ले जाता है जबकि स्वस्थ शरीर सात्त्विकता की ओर ले जाता है।
- वर्तमान को जानना ही वर्धमान को जानना है।
- निश्चय तक पहुँचाने वाला व्यवहार भी बड़ा कठिन है।
- भार को उठाने के लिए दूसरे की आवश्यकता होती है पर उतारने के लिए किसी की आवश्यकता नहीं होती है।

- मोह का विकास इस युग की विशेषता है इसलिए मोक्ष दूर है। मोह का विश्राम होना शुरूहो जाता है तो कलयुग में सतयुग होता है।
- प्रभाव शब्दों में नहीं शब्द के अर्थ में होता है।
- किसी की आकांक्षा को रखकर सेवा की जाती है तो वह सेवा फलवती नहीं होती।
- मन का रोग जिसके द्वारा मिट जाए वह सेवा वृद्ध सेवा होती है।
- साधुओं के समागम से जिसको संतोष हो गया है उन्हें कभी तृष्णा का रोग नहीं सताता।
- धैर्य और कायरता दोनों मानसिक स्थितियाँ है।
- अनुभव की बातें कही जाती हैं, उसे कहानी कहते हैं जो लिखी जाती हैं वे कथा होती हैं, उनमें भी अनुभव भरा होता है।
- अपरिग्रही हुए बिना आत्मा में लीनता नहीं हो सकती है।
- पंचपरमेष्ठी के चरण से आशय उनके आचरण से है।
- पंचपरमेष्ठी की आराधना उसे अच्छी लगती है जिसके पास संवेग वैराग्य है।
- साधु की संगति में उनकी चर्या पहले देखो, चर्चा बाद में सुनों। इसी से तिर्यंच भी पंचम गुणस्थान की भूमिका बना लेते हैं।
- संतों के समागम से विनय क्या होती है पता चलता है। दक्षता, विनयशीलता, सहनशीलता यह सब गुण साधु समागम से प्राप्त होते हैं।
- जिस प्रकार अग्नि के समागम से स्वर्ण शुद्ध हो जाता है वैसे ही

संतों के समागम से हमारा मन शुद्ध हो जाता है।

- जिसमें गुप्ति होती है, प्रवृत्ति का अभाव होता है वह निश्चय प्रतिक्रमण है।
- आध्यात्मिक ग्रंथों का कहना है प्रवृत्ति के समय मुनि का देशव्रत होता है क्योंकि उसके परालंबन होता है, उपकरण प्रवृत्ति में सहायक होता है।
- विनय मोक्ष का द्वार कहा गया है।
- विकल्प करने से सिद्धि नहीं होती है और विकल्प का त्याग करने से मोक्ष होता है।
- जब कषायों का उद्वेग हो तब चिंतन करो कि मैं पर का चिंतन कर रहा हूँ।
- जिसे अपनी पहचान नहीं वह दुनियादारी से कभी नहीं बच सकता।
- पर के बारे में जो करते हैं, उसका शतांश भी अपने बारे में करे तो बेड़ा पार।
- पुरुषार्थ करने वाला उसी निमित्त को अपनाता है जिससे उसका पुरुषार्थ विकसित हो।
- आत्मा के पास अनगिनत शक्तियाँ हैं, उन्हें उपयोग करने वाला चाहिए।
- ऐसा बोलना चाहिए कि कषाय भी शांत हो जाए। परन्तु ऐसा नहीं बोलना चाहिए कि शांत कषाय भी भड़क जाए।
- जीव पर पदार्थ के संयोग के कारण दुख का भागी बनता है

क्योंकि संयोग हमेशा वरदान नहीं होता है।

- अंतरंग परिग्रह चेतनात्मक और बाह्य परिग्रह अचेतनात्मक होते हैं।
- परिग्रह से हम चिपकते हैं, परिग्रह हमसे नहीं।
- जो वस्तु त्यों की त्यों बताए वह प्रमाण है।
- हँसना और प्रसन्न रहना दोनों अलग अलग बाते हैं।
- जिस प्रकार पक्षी दो पंखों का आलंबन लेकर आकाश में उड़ता है उसी प्रकार योगी दोनों प्रकार के परिग्रह त्याग के बिना मोक्षमार्ग पर चल नहीं सकता है।
- धन का भूत जिसे लग जाता है, वह संयम से च्युत हो जाता है।
- जो विषय कषायों से आकृष्ट रहता है, वह दूसरों को प्रभावित नहीं कर सकता है।
- मुनियों को यम, नियम, वैराग्य, तप आदि का परिग्रह रखना चाहिए।
- धन संग्रह में लग जाने से सिद्धियाँ भी विलोम रूप या नष्ट हो जाती हैं।
- इन्द्रियजय के लिए परिग्रह त्याग आवश्यक है क्योंकि इन्द्रिय के अपने-अपने विषय परिग्रह है।
- धन आते ही विवेक प्रायः समाप्त हो जाता है।
- धन, काम रूपी सर्प को रहने हेतु बांबी के समान है।
- धन के सम्पादन, संवर्द्धन और संरक्षण में आत्मा की रक्षा नहीं होती।

- जो प्रतिबद्ध होता है वही अप्रतिबद्ध होता है।
- कर्म घातक नहीं है पर वस्तुओं के प्रति जो लगाव है वह घातक है।
- पाप करना बंद कर देना ही सही रूप से पाप से डरना है।
- भावना से ध्यान महत्त्वपूर्ण माना गया है।
- प्रयोजनभूत पदार्थ के प्रति जो हमारी आस्था है श्रद्धा निष्ठा है वह राग नहीं है।
- द्रव्य/जड़कर्म नहीं भावकर्म हानिकारक है भावकर्म से बचने पर द्रव्य कर्म स्वतः चला जाता है।
- आशा छूट गई तो दुनिया में कुछ भी नहीं है।
- दया के बिना दम (इन्द्रियदमन) नहीं, दम के बिना त्याग नहीं, त्याग के बिना समाधि नहीं।
- तन से होने वाले बंध से अधिक वचन से और वचन से अधिक बंध मन से होता है।
- जिसका मानसिक आहार है उसका मन कमजोर है।
- असंयम को असंयम से नहीं संयम से दूर किया जा सकता है।
- लब्धिस्थान संकल्प की दृढ़ता से बढ़ते हैं।
- शत्रुओं से द्वेष छोड़ने की अपेक्षा मित्रों/बंधुओं से राग छोड़ना कठिन है।
- मुनि रूपी बालक की रक्षा 5 समिति (बाहर से) 3 गुप्ति (अंदर से) रूपी 8 माताएँ करती हैं।
- आत्मा की रक्षा जिससे हो उसे गुप्ति कहते हैं, जो शरीर की रक्षा

करें उसे भुक्ति कहते हैं।
- संदेह का अर्थ विश्वास को धक्का लगाना है।
- विकल्पों से रहित होकर समता रखना मनोगुप्ति है।
- भीतर की आकुलता जब असहनीय हो जाती है तब वचनों को अर्थात् बोला जाता है।
- वाणी का प्रयोग तीव्र आकुलता का परिहार है।
- ज्ञानी जब गुप्ति का सहारा लेता है तो निर्जरा का कारण बनता है।
- संयम से ज्ञान को संयत बनाया जाता है। संयत ज्ञान से निर्जरा होती है।
- जिन्हें भी केवलज्ञान हुआ है उन्हें मन, वचन अथवा काय गुप्ति रूपी माँ की गोद में ही हुआ है।
- ज्ञेय तत्त्व से राग नहीं होता है तो आत्मा को विश्राम मिलता है।
- मोह के क्षय के लिए पुरुषार्थ होता है, ज्ञानावरणादि के क्षय के लिए नहीं।
- स्थान की नहीं गुणस्थान की अपेक्षा रखो।
- कषाय जब जाग्रत होती है तो विवेक सो जाता है बुद्धि काम नहीं करता।
- क्रोध से आत्मसात वैराग्य भी भस्मीभूत हो जाता है।
- वीतरागता की तीनों लोकों को हिला सकने में समर्थ शक्ति भी क्रोध के द्वारा स्वयं हिल सकती है।
- जब कषाय आने लगती है, आत्मरुचि नहीं होती।

- प्रशम भाव से क्रोध शमन होता है।
- प्रयोग के बिना अध्ययन करने वाला व्यक्ति गाफिल होता है।
- अपने भाव के ऊपर किया गया क्रोध ही सही क्रोध है।
- व्यक्ति का परिचय उसकी चर्या से होता है देखने से नहीं।
- पुरुषार्थ के माध्यम से अतीत और अनागत दोनों को नियंत्रित किया जा सकता है।
- अप्रमत्त दशा का अनुभव करने से वेदनीय एवं आयु दोनों कर्मों की उदीरणा रुक जाती है।
- यदि सामने वाला व्यक्ति विवेकवान है तो आदेश देने की जरुरत नहीं, उपदेश ही उसके लिए आदेश है।
- जो क्रोधादि सहन नहीं कर सकता वह मोक्षमार्ग पर नहीं चल सकता है।
- मोक्षमार्ग भीतरी सम्बन्धों से अधिक प्रयोजन रखता है बाहरी से बहुत कम।
- भविष्य की चिंता है तो प्रतिकार मत करो।
- ज्ञानार्जन का प्रयास नहीं उसके प्रयोग का प्रयास करना चाहिए।
- कषाय सल्लेखना के बिना काय सल्लेखना अधूरी है।
- अशांति में शांति बनाये रखना ही मोक्षमार्ग है।
- मन को अच्छा रखने के लिए सत् साहित्य (जिनवाणी) का अवलोकन करना चाहिए।
- जो स्वयं को जितना जाग्रत रखता है उसकी कर्म निर्जरा उतनी ही अधिक होती है।

- प्रशंसा के समय कान नहीं फूलना, निंदा के समय नाक नहीं फूलना ही परिषह तप है।
- समता के साथ परिषह तप किया हो तभी समाधिमरण संभव है अन्यथा नहीं।
- सभी परिषहों को विजय करना ही निश्चय स्वाध्याय है।
- बैर से ही नहीं स्नेह से भी उपसर्ग होता है।
- निमित्त के ऊपर नहीं अपने कर्म के ऊपर रोष करना चाहिए।
- हम पिंजरे को पिंजरा समझते है पर शरीर को पिंजरा नहीं मानते।
- परलोक का भय होने से आत्म कल्याण शीघ्र होता है।
- मृत्यु का भय नहीं तो कल्याण शीघ्र होता है।
- उग्र परिषह को उपसर्ग की संज्ञा दी गई है।
- मान कषाय मात्र से नहीं वरन् मद करने योग्य आठ वस्तुओं के आश्रित होकर मद किया जाता है।
- मद अधूरेपन में होता है।
- बड़े व्यक्तियों को देखकर अपने आप में हीनता का अनुभव न कर हीनता का कारण खोजना चाहिए।
- गलती करना मानव का स्वभाव है पर गलती स्वीकारना महानता का प्रतीक है।
- गिरने वालों को देखकर सावधान हो जाना चाहिए।
- निरीह व्यक्ति ही भीतर बाहर से निर्भीक होता है।
- बाहरी तप के माध्यम से यदि कर्मों को पसीना नहीं आता तो तप व्यर्थ है।

- तत्त्व ज्ञान के परिधि में इन्द्रियाँ संयत होती है।
- मोक्षमार्ग में विषय गौण तथा ज्ञान मुख्य होता है असंयम में इसके विपरीत होता है।
- पंचेन्द्रियों का व्यापार करना प्रमाद का सूचक होता है।
- मन जाता है तो जाने दो पर राग द्वेष मत करो।
- आत्मा शरीर में है शरीर के आधीन नहीं।
- जो आसन सिद्ध नहीं करते उनके सल्लेखना के समय आर्तध्यान रोका नहीं जा सकता।
- सहारा एकमात्र आगम का ही होना चाहिए।
- यदि मन आपके आधीन है तो इन्द्रिय विषय कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं।
- भगवान् का दर्शन करने से अपनी आत्मा का मूल्यांकन स्वयं हो जाता है।
- मोक्षमार्ग बाहर नहीं वह तो अंतर में घटने वाली एक घटना विशेष है।
- सबसे उत्तम वह जो अपने मोक्षमार्ग सम्बन्धित समय पलभर किसी को नहीं देता।
- तत्त्व नियत है पर चित्त अनियत है।
- बाहरी पदार्थ को विषय बनाने से राग द्वेष होते हैं। आत्मा को विषय बनाने से उसका नाश होता है।
- ध्यान करने वाला व्यक्ति प्रायः निरोग हो जाता है।
- उपयोग को केन्द्रित करने से रोग शांत हो जाते हैं।

- भगवान् के पास जाने से राग-द्वेष से ऊपर उठने का अवसर मिलता है।
- पारे का पकड़ना आसान है पर मन को पकड़ना मुश्किल।
- शुद्धि का आहार लेने वाले के लिए कषाय नहीं होती।
- मन पर नियंत्रण हो जाने से शुद्धोपयोग सहज है।
- ध्यान नहीं सीखना वरन् दुर्ध्यान को जानकर त्याग करने से ही ध्यान प्रारम्भ हो जाता है।
- एक से चार इन्द्रिय तक के जीव नरक नहीं जा सकते, निगोद जा सकते हैं। असंज्ञी पाँच इन्द्रिय पहले नरक जा सकते हैं।
- भाव शुद्धि से कर्म क्षण भर में क्षय को प्राप्त हो जाते हैं।
- भगवान् हाथ उठाकर न तो आशीर्वाद देते हैं न ही अभिशाप अतः वे राग और द्वेष विहीन हैं।
- शुभोपयोग की भूमिका बुरी नहीं है पर शुद्धोपयोग ही लक्ष्य होना चाहिए।
- मुक्ति मार्ग में स्थिरता के साथ राग-द्वेष रहित होना चाहिए।
- बाहरी पदार्थ नहीं रुचता यही भीतरी स्वाद है।
- राग-द्वेष दुःख के बीज ही हैं।
- भीतरी साधना कितनी हो रही है साधक को यह देखते रहना चाहिए।
- उपयोग की धरती पर राग-द्वेष की लहर न आए वही अध्यात्म है।
- परिग्रह का जितना फैलाव होगा रागद्वेष उतना ही फलेगा।

- मोह संसार को और निर्मोही मोह को जीतता है।
- समता रखना ही परम ध्यान है।
- यदि दुनिया से शत्रुता चाहते हो तो एक से मित्रता कर लो शेष सब शत्रु हो जावेंगे।
- मूलगुण रहेगा तो मूल आम्नाय रहेगी अन्यथा नहीं।
- पूर्ण विराम का अर्थ है निर्वाण।
- मोक्षमार्ग के उपदेश को जो आदेश मानकर चलता है उसका मोक्षमार्ग सफल हो जाता है।
- चिंतन न हो तो कोई बात नहीं पर चिंता नहीं होना चाहिए।
- दिगम्बरत्व मात्र गुणस्थान के लिए कारण नहीं है।
- दो प्रकार के परिग्रहानंद होते हैं एक वस्तु के होने रूप, दूसरा परिग्रह की प्राप्ति रूप।
- आत्म प्रशंसा वाले व्यक्ति पर कभी करुणा नहीं करना चाहिए।
- छोटे-छोटे संकल्पों से ही संकल्प शक्ति की पुष्टि होती है।
- आसन जप होने से समाधि के समय निर्विकल्पता रहती है।
- योगियों का प्रथम कर्त्तव्य ध्यान है।
- मन इन्द्रियों की खिड़की से विषयों की यात्रा करता है।
- अहिंसा की साधना के लिए उपकरण भी बाधक होता है।
- आत्मा से अन्य पदार्थों को अनन्त बार देखा है पर स्वयं को कभी नहीं।
- अपने ज्ञायक स्वभाव को ध्यान में रखना यही मोक्षमार्ग है।
- अनुभव पर्याय संयुक्त द्रव्य होता है पर्याय मात्र का नहीं।

- द्रव्य और गुणों का परिणमन होता है पर्याय मात्र का नहीं।
- उपयोग जीव से कभी पृथक् नहीं होता है इसलिए वह जीव का लक्षण है।
- रागद्वेष हुए और हम आत्मा से विमुख हुए।
- बाहर की अपेक्षा हमारे जिनेन्द्रदेव में तथा मुनि लोग में कोई अंतर नहीं है।
- ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध मानना ही उत्कृष्ट स्वाध्याय है।
- मोक्षमार्ग में सावधानी वरदान है। असावधानी अभिशाप है।
- किताब में अध्यात्म नहीं अध्यात्म के कुछ संकेत मात्र दिए है।
- अपनी आत्मा की चिंता करने से सब विकल्प छूट जाते हैं।
- अपनी प्रवृत्ति से घाटा ही घाटा, निवृत्ति से लाभ ही लाभ।
- मोह की हवा में वैराग्य का दीपक बुझ जाता है।
- साधक कारण का सद्भाव बाधक कारण का अभाव साध्य का प्रादुर्भाव करने वाला है।
- धर्मध्यान की पोशाक में आर्तध्यान करना ठीक नहीं है।
- जीवन आयु की हानि का ही नाम है (वयोः हानि जीवनम्)।
- हाथों से ही पाप किया जाता है और हाथों से ही पाप धोया जाता है।
- पाप करके संतान का पालन माँ बाप का कर्त्तव्य नहीं है।
- स्वर्ग में अध्यात्म की अपेक्षा दरिद्रता है।
- गरम-गरम दूध जिस प्रकार जीभ को जला देता है उसी प्रकार इन्द्रिय-कषाय सम्यग्ज्ञान को समाप्त कर देता है।

- केवलज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों भाई–भाई है केवलज्ञान की महिमा भी श्रुतज्ञान के माध्यम से होती है।
- अज्ञान दशा में कर्मबन्ध और ज्ञान दशा में कर्म नष्ट होते है।
- कौन क्या कर रहा है इस जमा खर्च से पापबन्ध के अलावा कुछ नहीं होता है।
- साधना निरंतर होना चाहिए समय विशेष में नहीं।
- अभ्यास नहीं बढ़ाने से शक्तियाँ/क्षमताएँ कुण्ठित हो जाती हैं।
- स्वाध्याय वही करना चाहिए जहाँ संवेग एवं निर्वेग बढ़े।
- ध्यान यदि फूल है तो समाधि फल है।
- स्वतत्त्व को देखने से दरार नहीं पड़ती पर को देखने से दरार ही दरार है।
- मोक्षमार्ग में शक्ति से नहीं युक्ति से काम होता है।
- तरंग एवं रंग से रहित होने पर शरद ऋतु में नदियों का जल स्वच्छ हो जाता है उसी प्रकार रागद्वेष के अभाव में शुक्लध्यान होता है।
- आर्तध्यान दुखमय और रौद्रध्यान आनंदमय होता है।
- स्वाध्याय करते करते किसी को केवलज्ञान नहीं हुआ।
- जिस प्रकार विमान को उठने के लिए पट्टी की आवश्यकता होती है उसी प्रकार श्रुतज्ञान के लिए मतिज्ञान रूपी पट्टी आवश्यक है।
- चिंतन करने से मन का विकास नहीं होता है परन्तु मन विषयों से बच जाता है।
- केवली भगवान आराधक है सिद्ध आराध्य हैं।

- निगोद नि = निश्चय से जो गोद है। बहुत से जीवों का एक साथ रहने का स्थान।
- बच्चों को आदर नहीं प्यार दिया जाता है।
- मुनि बनना पर्याप्त नहीं है, मुनित्व होना आवश्यक है।
- श्रामण्य का अर्थ पर से ऊपर उठना है स्वभाव की ओर देखना है।
- ज्ञान को जिसमें विश्राम मिलता है, वही ध्यान है।
- गुणस्थानों में रहने वाला वास्तविक परमेष्ठी नहीं है।
- सत्ता, संस्था एवं सम्पदा से रहित होने पर ही साहित्य की सेवा कर सकता है। इनकी संगति करने वाले भी बिगड़े बिना नहीं रह सकते है।
- बाहर हिंसा तभी होती है जब अंदर हो चुकी हो।
- प्रतिष्ठा मन की खुराक है इन्द्रियों की नहीं।
- मनुष्य होकर भी पूछ चाहोगे तो पशु हो जाओगे सभी अनर्थ मान प्रतिष्ठा के कारण होते हैं।
- मद से व्यक्ति अंधा हो जाता है ज्ञान होने से अंधा ज्ञानी हो जाता है।
- दूरदर्शन की नहीं दूरदृष्टि की आवश्यकता है।
- मुनि मानी नहीं होते सम्मान सिखाने वाले होते हैं।
- परिग्रह संसारी प्राणी को टेढ़ा कर रहा है। मोक्ष मार्ग रूपी श्वास नली में परिग्रह रूपी अन्न का एक भी दाना चला जाए तो उसको ठसका लग जाता है।

- वर्तमान को पाने के लिए भूत भविष्य को विस्मृत करना होगा।
- सूत काटने की तकली की डंडी यदि टेढ़ी है तो सूत बार-बार टूटने लगता है। सीधी हुए बिना सूत भी नहीं काटा जा सकता है।
- भगवान् नासा पर दृष्टि रखते हैं संसारी प्राणी आशा पर।
- रत्नत्रयधारी के शरीर में वक्रता हो सकती है।
- आर्जवधर्म का कथन नहीं अनुभव किया जा सकता है।
- आचार्यों के सूत्र पढ़ने से ध्यान अपने आप लग जाता है।
- विज्ञान पर को विषय बना देता है, सम्यग्ज्ञान पर के विषय छुड़ा देता है।
- राग-द्वेष अन्य से नहीं, अन्य को निमित्त बनाने से आता है।
- गर्व करने से अहंकार हो जाता है। स्व के परिचय के बिना सबका परिचय कोई महत्त्व नहीं रखता है।
- 3 वर्ष तक माता-पिता, भाई-बहिन द्वारा दिए गए संस्कार जीवन भर काम आते हैं।
- चारों कषायों के कारण असत्य बोला जाता है।
- कषायों से बचने का एक मात्र उपाय कषायों को जानना।
- दुनिया को देखने से नहीं परिणामों को देखने से सत्य का संरक्षण होता है।
- निमित्तों पर टूटने वाला सत्य को नहीं समझता।
- जिस ज्ञान का फल उपेक्षा है वह सत्य है।
- राजा की आज्ञा का उल्लंघन प्रजा के लिए अभिशाप है।
- रत्नत्रय रूपी फसल को पकाने हेतु तप रूपी सूर्य आवश्यक है।

तप से रत्नत्रय आराध्य होता है।

- तप के कारण निर्जरा का विकास होता है। तप का उपसंहार ध्यान में होता है।
- किसी के प्रति राग नहीं रखना ही सच्चा त्याग है।
- भगवान् शील के शिखर हैं, संसारी प्राणी शील से रहित।
- चारित्र केवल चारित्र नहीं रहता उसका सम्बन्ध दर्शन से अवश्य रहता है।
- गृहस्थ पाप की कमाई को भी दान के माध्यम से पुण्य में बदल देता है।
- जिस प्रकार सिकाई के लिए पानी की थैली को चार आना खाली रखते हैं। तभी सिकाई होती है वैसे ही अर्जित धन में से चार आना दान अतिथि से विभाग के लिए निकालने से आत्मस्थ जीवन स्वस्थ होता है। यह आपकी एफ.डी. स्थायी जमा है अतिथि संविभाग का अर्थ मात्र पात्रों को दान ही नहीं अपितु अर्जित धन का बँटवारा / विभाग भी है।
- सम्यग्दर्शन के आठ अंगों में चार अंग भीतर की ओर व शेष बाहर की ओर इंगित करते हैं।
- वैयावृत्ति नोटों से नहीं हाथ और मन से होती है।
- प्राणी मात्र से जुड़ने का प्रयास ही महावीर का एक बड़ा सिद्धान्त है।
- जीव जीव का उपकारी हो सकता है खुराक नहीं।
- ज्ञायक अहिंसा की आराधना करता है ज्ञान की नहीं।

- भगवान् महावीर के जीवन में जोड़ने की नहीं, छोड़ने की बात है।
- महावीर ने पुण्य को बाँधा था पर पुण्य ने उनको नहीं बाँधा इसलिए वे समवसरण में चार अंगुल ऊपर रहते हैं।
- भगवान् महावीर जहाँ बैठ जाते थे, वहाँ समवसरण रच जाता था पर वे समवसरण से भिन्न रहते थे।
- काल का जिसे ज्ञान हो जाता है, वह किसी से चिपकना नहीं चाहता है।
- मुक्ति के पहले समवसरण को छोड़ देना यह भी एक मौन उपदेश है।
- आजकल कल के बारे में तो सोचा जाता है पर आज के बारे में नहीं।
- जहाँ पर अहिंसा हो वहाँ पर तीर्थंकर है।
- हमारे हृदय में अहिंसा है तो महावीर भी हमारे भीतर हैं।
- ज्ञान अहिंसा के लिए है, अहिंसा ज्ञान के लिए नहीं।
- ज्ञान के उपरान्त अहिंसा निर्दोष पलती है।
- सत्ता की भूख जागने पर शासन कमजोर हो जाता है।
- स्वतंत्रता से हमें लाभ हुआ है पर लाभ लेने की हमारी पात्रता नहीं।
- माँ की नजर संतान को तो लग सकती है पर पशु की नजर मनुष्य को आज तक नहीं लगी। पशु को जरुर मनुष्य की नजर लग सकती है।

- निरालंबन और सालंबन पद्धति के विकल्प से उपासना पद्धति दो प्रकार की है सालंबन श्रावक की, निरालंबन मुनि की।
- जहाँ अहिंसा की रक्षा हो वहाँ सब कुछ सुरक्षित है।
- सत्य और झूठ के बीच खड़ा मील होता है वकील।
- बुद्धि की सीमा पर जब ब्रेक लग जाता है तब क्रोध आता है।
- मोक्षमार्ग निर्भीक एवं निरीहता से चलता है भयभीत व्यक्तियों से नहीं।
- 28 मूलगुण मुनि की पहचान है ये रहेंगे तो देव, शास्त्र, गुरु सुरक्षित रहेंगे। जाति, कुल आदि से मुनि की पहचान नहीं होती, न ही करना चाहिए।
- तप का फल सल्लेखना है इसलिए उसे हमेशा सामने रखना चाहिए।
- त्याग के बिना मुनि की शोभा नहीं और सिंहवृत्ति के बिना मुनि का जीवन नहीं।
- पाप-पुण्य को एक मान लेने से नौ पदार्थ में से एक कम हो जावेगा।
- रोग निवारण के लिए औषध है। स्वास्थ्य के लिए भोजन कारण है।
- रागद्वेष पक्षपात का जनक है मध्यस्थ भाव उसको निवारण करने वाला है।
- ज्ञानी का ज्ञान जड़ वस्तु की गिनती लगाने के लिए नहीं उससे वह अपने आपको जानने का प्रयास करता है।

- केवलज्ञान साध्य के रूप में उपादेय है। शुद्धोपयोग साधन के रूप में। साधन छूटने वाला होता है, साध्य नहीं।
- भावना के माध्यम से प्रभावना होती है प्रवचन से नहीं।
- अनंत काल की थकावट भी आत्मान्मुखी होने से दूर हो जावेगी।
- ज्ञेय को ज्ञान का विषय बनाओ पर उससे सम्पर्क मत रखो क्योंकि संपर्क से स्नेह में वृद्धि होती है।
- व्यवहार अनिवार्य नहीं कभी-कभी आवश्यक है वह मूल नहीं बीच में आता है।
- नौ कर्मों का कथंचित् प्रतिकार कर सकते हैं कर्मों का कदापि नहीं।
- अपने कार्य में लीन हो जाना उपेक्षा है।
- रागद्वेष भाव का अभाव होना माध्यस्थ भाव है।
- प्रवृत्ति के समय माध्यस्थ भाव व निवृत्ति के समय उपेक्षाभाव होता है।
- अद्वितीय सूत्र किसी से उलझता नहीं कर्त्तव्य में उलझन नहीं कर्तव्य। कर्तृत्व में उलझन के अलावा कुछ नहीं।
- तत्त्व निर्णय के लिए ज्ञान की आवश्यकता है पर अपने को जानने के लिए स्वसंवेदन की जरुरत है।
- एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता है यह सिद्धान्त जिसे ज्ञात नहीं वह मारा मारा फिरता है।
- दुनिया में सोच का संघर्ष है, अनुभव का नहीं।
- समाधि में रहकर समाधि की बात न तो सुनी जा सकती है और न

ही की जा सकती है। उस समय केवल अनूभूति की जा सकती है।

- घर में उपशम तो हो सकता है पर प्रशम नहीं हो सकता है।
- कायक्लेश से शरीर में दु:ख सहने की क्षमता आती है।
- युक्ति के माध्यम से आगम को सिद्ध नहीं किया जा सकता।
- आस्था के बाद कदम रास्ते पर होना चाहिए।
- मोह से प्रभावित उपयोग की धारा सम्यक् चारित्र का समाप्त कर देती है।
- अनुभव तात्कालिक और श्रद्धान ही सही सम्यग्दर्शन है।
- ध्यान में सिद्धत्व का अनुभव नहीं होता सिद्धत्व के लिए ध्यान होता है। ऐसा श्रद्धान ही सही सम्यक दर्शन है।
- शक्तिमान मुख्य है शक्ति नहीं।
- जो व्यक्ति डरता है और डराता है वह सकषाय है।
- दाता को कभी अभिमान एवं पात्र को कभी याचना नहीं करना चाहिए।
- जिसने परिग्रह त्याग नहीं किया वह स्वस्थ नहीं है।
- आवीचिमरण की और दृष्टि रहेगी तो मरण से भय नहीं होगा।
- मोह सब पदार्थों को उल्टा दिखाता है (पदार्थों को अच्छा बुरा मानना)
- उपयोग की स्थिरता वरदान तथा अस्थिरता अभिशाप है।
- विज्ञान को दर्शन की कसौटी पर कसा जा सकता है पर विज्ञान को कसौटी नहीं बनाया जा सकता।

- समवसरण की रचना तीर्थंकर प्रकृति की उदीरणा से होती है उदय से नहीं।
- कर्त्तव्य स्वयं का होता है, पर को निमित्त बनाया जाता है।
- मनुष्य के विचार भी आचार से निर्मित होते हैं और विचार से निष्ठा या श्रद्धा उत्पन्न होती है।
- कर्म के साथ मन का सुंदर होना और मन के साथ वाणी का मधुर होना विकास की सीढ़ी है।

सोला क्या है ?

- सोलह प्रकार की शुद्धि पूर्वक बनाये गये भोजन को सोला कहते हैं। द्रव्य शुद्धि चार प्रकार, क्षेत्र शुद्धि चार प्रकार, काल शुद्धि चार प्रकार और भाव शुद्धि चार प्रकार।
- **द्रव्य शुद्धि**-

1. **अन्न शुद्धि** - खाद्य सामग्री सड़ी गली या घुनी न हो, जमीकंद आदि अभक्ष्य न हो।
2. **जल शुद्धि** - जीवानी किया प्रासुक जल हो।
3. **अग्नि शुद्धि** - ईंधन देख शोधकर उपयोग किया जावे, उसमें छोटे-मोटे जीव जन्तु न हों।
4. **कर्त्ता शुद्धि** - भोजन बनाने वाला स्वस्थ हो, नहा धोकर शुद्ध कपड़े पहनकर भोजन बनावें। इसके अतिरिक्त नाखून बड़े न हों, नेल पालिश न लगा हो, हाथों में पसीना न आता हो आदि सावधानी भी रखें।

- **क्षेत्र शुद्धि** -

1. सूर्य प्रकाश में ही भोजन बनावें।
2. आवागमन का स्थान चौका न हो।
3. हिंसा आदि कार्यों का स्थान न हो, स्वच्छ भी हो।
4. शुद्ध हवा आती हो।

- काल शुद्धि -

1. रात्रि न हो।
2. सूर्य ग्रहण न हो।
3. शोक (मरण) समय न हो।
4. प्रभावना (उत्सव) का समय न हो।

- भाव शुद्धि -

1. वात्सल्य
2. करुणा
3. विनय
4. दान

यह शुद्धियाँ विज्ञान की दृष्टि से भी हितकारी हैं। प्रत्येक श्रावक का कर्त्तव्य है कि वह प्रतिदिन उपरोक्त सोलह प्रकार की शुद्धिपूर्वक बनाए गए भोजन को ही ग्रहण करें और अन्दर बाह्य दोनों प्रकार के स्वास्थ्यों को प्राप्त करें।